प्रकाशक
अ० वा० सहस्रबुद्धे
मत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-सघ
वर्धा (म० प्र०)

प्रथम सस्करण   १५,०००
अक्तूबर, १९५५
मूल्य   चार आना

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

हमारे गाँव

हिन्दुस्तान शहरों में नहीं है। हिन्दुस्तान गांवों में बसता है। इसलिए अगर हम अपने ग्रामीणों के जीवन में सुधार, विकास कर सकें, तो बाकी का कुल सुधार अपने आप हो जायगा।

आज सम्पत्ति देहात से शहरों में होकर विदेश चली जाती है। इस प्रवाह को बदल देने की जरूरत है जिससे देहाती सम्पत्ति देहात में ही रहे और देहात स्वावलम्बी बने।

आदर्श भारतीय ग्राम इस तरह बनाया और बसाया जाना चाहिए कि जिससे वह सम्पूर्ण तथा नीरोग रह सके। आवश्यकतानुसार गांव में कुएँ हों जिससे गांव के सब आदमी पानी भर सकें, सबके प्रार्थना-घर या मन्दिर हों। सार्वजनिक सभा आदि के लिए एक अलग स्थान हो। गांव की अपनी गोचर भूमि हो। सहकारी तरीके की एक गोशाला हो। ऐसी प्राथमिक और माध्यमिक शालाएँ हों, जिसमें औद्योगिक शिक्षा सर्वप्रधान रखी जाय। गांव के अपने मामलों का निपटारा करने को एक ग्राम-पंचायत भी हो। अपनी आवश्यकता के लिए अनाज, साग-भाजी, फल, खादी इत्यादि खुद गांव में ही पैदा हों। एक आदर्श गांव की मेरी अपनी यह कल्पना है।

—गांधी

विषय-सूची

ग्राम-राज

: १ :

बंदर का न्याय

आप सब देहात के लोग यहाँ इकट्ठे हुए है, विनोबा की बात सुनने के लिए और उनके द्वारा चलाये हुए भूमिदान-यज्ञ को समझने के लिए। चार साल हो गये, विनोबा गाँव-गाँव जमीन मांगता घूम रहा है और साथ-साथ देश की जनता को इन्सानियत का पाठ पढ़ा रहा है। विनोबा का भूदान-यज्ञ आज देश का बच्चा-बच्चा जान गया है, लेकिन उसकी तह मे कौन-सा विचार है, उसका आखिरी मकसद क्या है, आदि बातो का ज्ञान आप गाँववालो को कौन कहे, शहरो मे रहनेवाले बड़े-बड़े पंडितो को भी नही है। इसलिए आज मै आप सबको इस आन्दोलन की तह मे ले जाना चाहता हूँ।

यह तो आप सब आपस मे कहते ही होगे कि देश मे गांधी का एक बड़ा चेला, महान् संत, विनोबा घूम-घूमकर जमीन बाँट रहा है, गरीबो की गरीबी दूर करने के लिए। लेकिन आपको इस बात पर विचार करना होगा कि क्या इस तरह जमीन बाँटने से गरीबो की गरीबी दूर होगी? सत-युग से आज तक दान-पुण्य की परंपरा हमारे देश मे रही है, फिर भी यह देश धीरे-धीरे

कगाल हो गया। आज गॉव-गॉव मे एक ही सवाल खडा है—रोटी, रोजी और कपडा। दूसरे धन-दौलत की बात तो दूर है, जब देश में रोटी-कपडे का ही सवाल खडा हो गया है तो कौन, किसको और किस चीज का दान देगा, जिससे देश की गरीबी दूर हो सके ?

आज नही, हमेशा ही ऐसा हुआ है कि हम लोग जो शहर-वासी पढे-लिखे बाबू लोग है, उनमें से कुछ दयालु व्यक्ति निकलते है, जिनका दिल गरीबो की गरीबी के लिए तडपता रहता है। अमीरो की इस दया-भावना को देखकर सत महापुरुषो ने उन्हे दरिद्रनारायण की सेवा का धर्म-ज्ञान दिया है। इस धर्म के पालन के लिए अमीर लोग दरिद्रनारायण की तलाश मे निकले। इस युग मे महात्मा गाधी ने कहा कि दरिद्रनारायण की बस्ती देहात में है। इसलिए उनकी सेवा करनी है तो आप सब देहातो में चले जाइये।

अब सवाल यह उठता है कि देहात के लोग दरिद्र क्यो है ? आखिर देश की सारी दौलत की जड तो देहात मे ही है, क्योकि खेती वही होती है। शहरो की बडी-बडी कोठियो की छत पर सम्पत्ति का निर्माण नही हो सकता। फिर भी हालत यह है कि जो देहात सारी सम्पत्ति पैदा करते है वे ही दरिद्र है और हम लोग जो शहर के रहनेवाले है, अमीर बनकर आप दरिद्रो की सेवा करने के लिए व्याकुल रहते है। यह अजीब बात है। मै आपको इसी बात पर विचार करने के लिए कहूँगा।

एक मिसाल लीजिये। आप लोग मिट्टी का कोई टीला बनाना चाहते है, तो उसके लिए गड्ढा खोदकर मिट्टी लेते है। फिर टीले पर घर बनाकर उसमें रहने लगते है। आपका घर

देखने में सुन्दर मालूम होता है, लेकिन उस सुन्दरता को बनाने में आप जो चारों तरफ गड्ढा खोदते हैं, उसमें बरसाती पानी जमा होता है। कचरा भी उसमें जमा होकर सड़ता है। फिर उसमें से मच्छर, बदबू, रोग आदि पैदा होते हैं और फैलते हैं, जिससे आपकी शांति में बाधा पहुँचती है। आप सोचते हैं कि इन गड्ढों को पाटना चाहिए। तब आप क्या करते हैं? उस टीले में से अगर कुछ मिट्टी खुरचकर डालने की बात आप सोचेंगे तो गड्ढा नहीं पटेगा। दूसरे स्थान से मिट्टी लाकर पाटना चाहेंगे तो दूसरे स्थान पर गड्ढा हो जायगा। फिर वहाँ पर कुछ दिनों के बाद वही समस्या पैदा होगी। ऐसी हालत में गड्ढे की समस्या का हल क्या होगा, यह आप ही सोच सकते हैं। उसका सही हल तो पूरे टीले को गड्ढे में डालकर उसे जमीन की सतह के बराबर लाने में ही है।

उसी प्रकार आप कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि बड़े-बड़े शहरों में बड़ी-बड़ी कोठियों के जो टीले देखते हैं, उनका निर्माण देहाती कमाई करनेवाले देहाती मजदूरों के पेट में गड्ढा करके हुआ है। काफी गड्ढे हो जाने पर उनका करुण-क्रन्दन हमारे कानों में पहुँचता है। उस रोने की आवाज से हम बेचैन होते हैं और उनके प्रति हमारे दिलों में करुणा और दया की भावना पैदा होती है। फिर हम अपनी बेचैनी को शांत करने के लिए उन बेचारे देहाती मजदूरों की सेवा करने की बात सोचते हैं। तो अब बताइये, उनकी सेवा कैसे हो, जिससे उनके पेट का गड्ढा पाटा जा सके। आप थोड़ा विचार करें कि आखिर हम इनके लिए करते क्या हैं?

इस सेवा-कार्य के लिए हम सम्पत्ति के उन टीलों के पास

पहुँचते है। उनमे से थोडा-सा खुरचकर चन्दे के रूप मे हम इकट्ठा करते है और उस फड मे से अस्पताल खोलकर गरीबो को कुछ दवा बाँटते है। कुछ रूई ले जाकर चरखा चलवाते है, खादी बनाकर उन्ही टीलो के हाथ बेचते है इस प्रकार उन टीलो मे से और थोडी सम्पत्ति खुरचकर गाँववालो को वापस करते है। इसी तरह दूसरे ग्रामोद्योगो के द्वारा भी कुछ राहत पहुँचाने की कोशिश करते है। आप लोग भी इसके लिए आशीर्वाद देते रहते है। लेकिन आप बताये कि क्या इस तरीके से कभी पूरा गड्ढा पटेगा? इससे अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि सदियो से शोषण और दमन के कारण दरिद्रनारायण जो बेहोश हो गया है, इस राहत से होश पाकर चिल्लाने की स्थिति में आ जायगा।

अतएव आज जब विनोबा दरिद्रनारायण की बुनियादी समस्या हल करने के लिए निकला है, तो आपको इस ऊपरी राहत की बात छोडकर समस्या की बुनियादी बात पर पहुँचना होगा और उसका हल निकालना होगा। यह हल भी दूसरे लोग आपके लिए नही निकाल सकेगे। खुद आपको ही उसे ढूँढना होगा। हम टीले पर बैठे हुए जब कभी आपकी समस्याओ की बात सोचेगे, तो थोडा-थोडा टीला खुरचने की बात करेगे। लेकिन पूरे टीले को ढहा देने की बात हमारे दिमाग मे आ ही नही सकती, क्योकि उसमें हमारी आत्मरक्षा का सवाल है। इसीलिए मै कहता था कि विनोबा के आन्दोलन की तह में क्या है, इस पर विचार करने की जिम्मेवारी आपकी ही है।

महात्मा गाधी ने इसी बुनियादी समस्या का हल बताने के लिए जन्म लिया था। उन्होने देश भर में अहिसक समाज कायम

करने का सुझाव दिया था। अहिंसक समाज का मतलब यह है कि कोई किसी का हिस्सा न ले और सब अपनी मेहनत की कमाई खाये। लेकिन यह हो कैसे ? आज तो दुनिया की हालत विचित्र हो गयी है। किसान और मजदूर की पैदावार चाट जानेवाले बहुत लोग पैदा हो गये हैं। वह भी किसान के घर में सीधे डाका डालकर नहीं, बल्कि उनकी तरह-तरह की सेवा करने के बहाने से। बाबू लोग क्या सेवाएं करते हैं, उनका स्वरूप क्या है, यह आप सबको समझ लेना चाहिए।

सबसे बड़ी सेवा तो राज्य-व्यवस्था की है। आप सब नासमझ हैं, इन्तजाम नहीं कर सकते हैं, इसलिए आपका इन्तजाम हम कर देते हैं, महज मजदूरी लेकर। यह तो आप सब जानते ही हैं कि बच्चे पर दया उसके मां-बाप ही कर सकते हैं, दूसरे नहीं। तो जो धन-दौलत है उस पर भी रहम उसे पैदा करनेवाले ही कर सकते हैं। हम इन्तजाम करनेवाले तो उसे पैदा नहीं करते, इसलिए उसे बेरहमी से इस्तेमाल करते हैं और इस कारण हक से ज्यादा खा भी लेते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए मैं आपको बचपन में पढ़ी एक कहानी सुनाना चाहता हूं। आपमें से जो लोग पढ़े-लिखे हैं, उन्होंने यह कहानी पढ़ी भी होगी।

कहानी है बन्दर और बिल्ली की। दो बिल्लियां बड़ी मेहनत से कहीं से कुछ खोआ लायीं। खोआ को बराबर-बराबर बांटने में कुछ मतभेद हुआ। यह सारा हाल एक बन्दर देखता रहा। उसके मुंह में पानी भर आया। उसने पास आकर बांटने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उसने एक तराजू लाकर अंदाज

से खोए के दो हिस्से किये और दो पलडो मे उन्हे चढाया। एक पलडा जब अधिक वजन से झुकने लगा, तो उसने उसमे का थोडा-सा खोआ निकालकर खा लिया। अब दूसरा पलडा भारी पडने लगा, तो उसने दूसरे पलडे के खोए मे से भी थोडा-सा निकाल कर खा लिया। इस क्रिया से सारा खोआ धीरे-धीरे बन्दर के पेट मे चला गया और बेचारी बिल्लियाँ भूखी ही रह गयी। उसी तरह आप जो कुछ पैदा करते है; वह सब बीच के 'व्यवस्था करनेवालो' के पेट मे चला जाता है और आप भूखे रह जाते है।

अब आपको समझना होगा कि यह राज्य-व्यवस्था किस तरह फैली और उसकी जन्म-कथा क्या है। तभी आप इस बोझ से मुक्त होने का रास्ता खोज सकेंगे।

: २ :

शोषण-मुक्ति के लिए शासन-मुक्ति

एक ऐसा भी जमाना था जब दुनिया मे कोई राजा नही था। उसकी जरूरत नही थी। जहाँ कही पानी मिल जाता था वही लोग झुण्ड बनाकर बस जाते थे। वे आपस मे मिलकर खेती-बारी करते थे और शिकार भी करते थे। धीरे-धीरे आबादी बढी और आपस मे कुछ झगडा-टण्टा भी होने लगा। ऐसे झगडो मे हिंसा पैदा हुई। इससे लोग परेशान हुए। उन्होने देखा कि इस तरीके से तो जिन्दा रहना ही मुश्किल है और जिन्दा तो सभी रहना चाहते है। दुनिया मे जितने किस्म के भय है, उनमे मरने का भय सबसे बडा होता है।

भागवत मे एक कथा है कि एक बार लोग परेशान होकर ब्रह्मा के पास पहुंचे और उनसे कहा कि महाराज, हम लोगो के आपसी झगडे के मारे आपकी सृष्टि का ही नाश होने का भय पैदा हो गया है। अत हमारे प्राण बचाने के लिए और अपनी सृष्टि की रक्षा के लिए आप कुछ उपाय करे। ब्रह्मा ने सोच-समझकर लोगो का झगडा मिटाने के लिए पृथ्वी पर राजा भेजा। तब से शांति-स्थापन के लिए राजा का जन्म हुआ। यह पौराणिक कथा है। पर वस्तुत मनुष्य ने राज्य-प्रथा का आविष्कार तभी किया था, जब परिस्थिति के कारण मनुष्य का स्वार्थ आपस मे टकराने

लगा और मनुष्य आपस में एक-दूसरे के खिलाफ हिंसा का प्रयोग करने लगे। ऐसी दशा में राजा का काम सबको शान्त तथा मर्यादित रखने का हुआ। फलत वह उत्पादक कार्य से अलग हो गया। उत्पादको ने सोचा कि सबके उत्पादन से राज्य-कर के रूप में कुछ थोडी-थोडी सामग्री राजा को दी जाय। क्रमश राजा का काम बढने लगा, क्योकि जब लोगो को एक सरदार मिल गया, तो स्वभावत वे निश्चिन्त हो गये और इस कारण उनमें सुस्ती भी आने लगी। जनता को राजा की आवश्यकता दिन-दिन अधिक महसूस होने लगी। दूसरी तरफ राजा के अधिकार और शक्ति बढने के कारण उसमें मद का विकास हुआ और वह प्रजा का निर्दलन भी करने लगा। धीरे-धीरे प्रजा को राजा का इस प्रकार का अत्याचार खलने लगा और वह राजा को हटाने की बात सोचने लगी। उसने समझा कि अधिकार और शक्ति पाकर राजा मदांध हो गया है और अब वह प्रजा की भलाई नही सोच सकता। वह राजदड को प्रजा के झगडे के निराकरण मे इस्तेमाल करने के बजाय अपनी शक्ति और सत्ता को बढाने में ही इस्तेमाल करता है। अत प्रजा ने विद्रोह किया और राजा को सिंहासन से उतार दिया।

लेकिन ऐसा करने मे लोगो ने एक बहुत भारी भूल की। प्रजा-पीडन मे राजा का ही दोष नही था। किसी भी सकट के लिए सामाजिक व्यवस्था जिम्मेवार होती है, न कि उसे चलानेवाला व्यक्ति। जनता का सकट इसलिए नही था कि राजा के हाथ मे दड था। बल्कि इसलिए था कि दड-शक्ति द्वारा समाज के सचालन की प्रथा कायम हो गयी थी और जब दड के नीचे

प्रजा आ जाती है तब दंडधारी अपनी सत्ता संगठित करने में उसका उपयोग तो करेगा ही, क्योंकि सत्ता-प्राप्ति के साथ-साथ उसकी वृद्धि की चेष्टा स्वाभाविक है। दंड रहेगा तो चलेगा ही।

लोगों ने इस तत्त्व को नहीं समझा। उन्होंने व्यक्ति को ही दोषी माना, प्रथा को नहीं। उन्होंने राजदंड को राजा के हाथ से निकालकर जनता के प्रतिनिधियों की पार्लमेन्ट के हाथ में सौंप दिया। लेकिन नतीजा और खराब ही हुआ। "सैयाँ भये कोतवाल अब डर काहे का।" जब प्रतिनिधियों के हाथ में दंड चला गया तो स्वभावतः जनता को इस बात की आशा हुई कि नया दंडधारी प्रतिनिधि-मंडल राजा से अधिक जनता की सेवा करेगा, क्योंकि वे उनके ही अंग हैं। दूसरी ओर जब प्रतिनिधि-मंडल के हाथ में राज-दंड तथा शक्ति आ गयी, तो स्वभावतः उनमें अपने अधिकार तथा सत्ता की वृद्धि की प्रवृत्ति जाग उठी और उनकी आकांक्षा इस दिशा में आगे बढ़ने लगी। जनता की यह आकांक्षा कि राज्य द्वारा जन-जीवन की अधिक-से-अधिक व्यवस्था हो और अधिकारी की यह आकांक्षा कि अधिकार-वृद्धि हो,—इन दोनों आकांक्षाओं ने मिलकर जनता के जीवन पर नयी राज्यव्यवस्था का आधिपत्य पहले से भी ज्यादा स्थापित कर दिया। दिन-दिन यह प्रक्रिया आगे ही बढ़ती गयी। आज तो उसका स्वरूप अत्यन्त भयंकर हो गया है।

आज आप लोग देहात में रहते हुए भी राज्य के बोझ का अनुभव कर रहे हैं। देश भर में व्यवस्था और प्रबन्ध के बहाने असंख्य लोग घूम रहे हैं। आपके ही गाँव में कितने इन्स्पेक्टर और डिप्टी आते हैं, उनका कोई ठिकाना है? सुबह से घड़ी

लेकर बैठ जाइये, एक अधिकारी आता है और कहता है कि "मै टीका लगानेवाला अधिकारी हूं।" दूसरा आता है तो कहता है कि "मै खाद का गड्ढा देखनेवाला अधिकारी हूं।" इस प्रकार कोई सडक, कोई खेती तो कोई मछली, मुर्गी पालने की ही बात बताने के बहाने से आपके गॉव मे आपके इन्तजाम के लिए आता है और इन्तजाम के लिए आपसे फीस भी लेता है। ये सब आपके सेवक है, नौकर है, लेकिन अजीब बात यह है कि नौकर मालिक से सौगुने अच्छे कपडे पहनते है और खाते है, तब आप समझ सकते है कि मालिक की दशा क्या होगी।

इस प्रकार जब आप गहराई से विचार करने लगेंगे तो आपको मालूम होगा कि यद्यपि राज्यव्यवस्था जनता के घरेलू झगडे निपटाने के लिए शुरू हुई थी, तथापि उसने बढते-बढते आज सम्पूर्ण मानव-जीवन को आत्मसात् कर लिया है। आज जनता राज्यरूपी शिकजे के नीचे दबकर मरना चाहती है। जो कुछ आप पैदा कर रहे है, वह सब सरकारी नौकरो को खिलाने मे ही चला जाता है, तो आपको खाने के लिए कहाँ से मिलेगा? आप लोग शोषण की समस्या के बारे में सुनते होगे। कहते है कि पूंजीपति शोषण करता है इसलिए उसका नाश करना चाहिए। लेकिन आज तो पूंजीपति और पूंजी से चलनेवाला शासन यानी राज्यपति, दोनो अपने-अपने ढग से जनता का शोषण कर रहे है। दोनो ऐसे मिल गये है कि एक को दूसरे से अलग करना कठिन है। किसी देश में पूंजी के हाथ में राज्य है (जैसे अमेरिका, इग्लैड आदि) तो कही राज्य के हाथ मे पूंजी है (जैसे रूस)। बाहरी रूप चाहे जो हो, सत्ता और पूंजी का गठबधन हर जगह है।

आपको यह समझाया जाता है कि पूंजीपति आपका शोषण कर लेता है, इसलिए उसका अन्त करना चाहिए। लेकिन केवल इतने से ही काम नहीं चलेगा। पूंजीपति आज के जमाने में राज्य से अलग चीज नहीं है। अगर आप गहराई में सोचें तो देखेंगे कि पूंजी चाहे पूंजीपति के हाथ में हो, चाहे राज्य के हाथ में, आपकी स्थिति में बहुत अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए आपको एक साथ पूंजी और राज्य, दोनों से मुक्त होना पड़ेगा। तभी आप जो पैदा करते हैं उसका चैन से उपभोग कर सकेंगे।

आप लोग सोचते हैं कि अंग्रेज गये तो आपका काम पूरा हो गया और आपको आगे कुछ करना ही नहीं है। यही कारण है कि स्वराज्य-प्राप्ति के बावजूद जब आपकी तकलीफ खतम न होकर बढ़ती ही जाती है, तो आप परेशान हो जाते हैं। फिर इस परेशानी के कारण आप दूसरे लोगों की शिकायत करते हैं। लेकिन इस शिकायत से तो आपकी समस्या का समाधान होने-वाला है नहीं। उसके लिए सारी परिस्थिति पर विचार करना होगा और उसमें से बाहर निकलने का रास्ता ढूंढना होगा। आखिर आप लोगों ने अंग्रेजी शासन से मुक्त होना क्यों चाहा? क्या इसीलिए अंग्रेजों से लड़े कि हमें विदेशियों का राज्य पसन्द नहीं था? इस देश की परम्परा में ऐसी अरुचि की बात तो है ही नहीं। हजार वर्ष से कई विदेशी जातियां यहां आयीं और उन्होंने हम पर राज्य किया। लेकिन हमने कभी उन्हें हटाने की कोशिश नहीं की। तो अंग्रेज के आने के बाद दो सौ वर्ष के अन्दर ही आजादी की बात क्यों उठी? इसलिए इस प्रश्न पर आपको गहराई से सोचना चाहिए। बात यह है कि पहले जो लोग आये,

वे हमारे देश मे केवल हुकूमत करते रहे। देश का शोषण उन्होने नही किया। अग्रेज हमारे देश मे हुकूमत करने के लिए नही आये। वे शोषण के लिए आये। देश का शोपण इतना ज्यादा होने लगा कि सारी जनता कगाल हो गयी। इस कगालियत की हालत से निकलने के लिए हम लोगो ने शोपण से मुक्त होना चाहा। इसीलिए हमने अग्रेजो को हटाना चाहा। इस तरह हमारी लडाई वास्तव में अग्रेजी राज्य से नही, वल्कि शोपण से रही है। यही कारण है कि गाधीजी हमेशा कहते थे कि विदेशी राज्य हटाना स्वराज्य का पहला कदम है। असली स्वराज्य तो तव होगा जव शोषणहीन-समाज कायम हो जायगा।

अतएव असली स्वराज्य तो शोषणहीन यानी शासनमुक्त समाज है। शासनमुक्त समाज का अर्थ यह नही है कि समाज में कुछ व्यवस्था ही न हो। देखना तो यह है कि समाज मे व्यवस्था भी कायम रहे और साथ-साथ शासनमुक्त भी हो जायँ। यह कैसे होगा, इस पर विचार करने की जरूरत है।

समाज में जब तक सचालन की आवश्यकता होगी, तव तक शासन की भी जरूरत रहेगी। अत आपका मनचाहा समाज सचालित नही होगा, यह निश्चित है। सचालन नही रखना है, तो सहकारी-व्यवस्था स्थापित करनी है। लेकिन सचालन यानी शासन से मुक्ति तो तव मिलेगी जब आप अपने-अपने गाँव मे अपनी व्यवस्था अपने आप चला ले। इसीको गाधीजी स्वावलम्बी समाज और विनोबा ग्राम-राज कहते है। अपने गाँव में अपना राज हो जाय तो सरकारी नौकरशाही के राज से मुक्ति मिल जाय।

: ३ :

हिंसा से मुक्ति कैसे मिले ?

शासन के भयंकर संघटन के कारण जनता का शोषण होता है, इतना ही नहीं, बल्कि राज्य के बोझ के कारण उसका दमन भी होता है। इसलिए आज की दुनिया में राज्यव्यवस्था आशीर्वाद के बदले अभिशाप साबित हो रही है। तभी तो हम शासनमुक्त 'ग्रामराज' चाहते हैं। आज की दुनिया की हालत ऐसी है कि बिना शासनमुक्ति के इन्सान की जिन्दगी खतरे में पड़ गयी है। आपमें से बहुत से देहात के भाई काफी पढ़े-लिखे होंगे। आपको मालूम होगा कि जितने पढ़े-लिखे लोग हैं वे हर बात में विज्ञान की दुहाई देते हैं। यहां तक कि वे कहते हैं कि गांधीजी भले ही महात्मा रहे हों, लेकिन वे इस वैज्ञानिक-युग के आदमी नहीं थे। वे कहते हैं कि इस युग में गांधी की राह चलने लायक नहीं है। उनकी राय में गांधीजी दुनिया को हजार वर्ष पीछे घसीट ले जाना चाहते थे। लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूं कि आज का युग वैज्ञानिक-युग है इसीलिए गांधीजी का जन्म हुआ, ताकि वे विज्ञान के संकट से मानव-समाज का उद्धार कर सकें।

आप मन में सोचते होंगे कि भला विज्ञान कहीं संकट का कारण हो सकता है? विज्ञान ने तो मनुष्य की तरक्की की है। यह ठीक है कि विज्ञान ने मानव-समाज का बड़ा कल्याण किया

वे हमारे देश मे केवल हुकूमत करते रहे। देश का शोषण उन्होंने नहीं किया। अंग्रेज हमारे देश मे हुकूमत करने के लिए नही आये। वे शोषण के लिए आये। देश का शोषण इतना ज्यादा होने लगा कि सारी जनता कंगाल हो गयी। इस कंगालियत की हालत से निकलने के लिए हम लोगो ने शोषण से मुक्त होना चाहा। इसीलिए हमने अंग्रेजो को हटाना चाहा। इस तरह हमारी लड़ाई वास्तव में अंग्रेजी राज्य से नही, बल्कि शोषण से रही है। यही कारण है कि गाधीजी हमेशा कहते थे कि विदेशी राज्य हटाना स्वराज्य का पहला कदम है। असली स्वराज्य तो तब होगा जब शोषणहीन-समाज कायम हो जायगा।

अतएव असली स्वराज्य तो शोषणहीन यानी शासनमुक्त समाज है। शासनमुक्त समाज का अर्थ यह नही है कि समाज में कुछ व्यवस्था ही न हो। देखना तो यह है कि समाज मे व्यवस्था भी कायम रहे और साथ-साथ शासनमुक्त भी हो जायँ। यह कैसे होगा, इस पर विचार करने की जरूरत है।

समाज मे जब तक सचालन की आवश्यकता होगी, तब तक शासन की भी जरूरत रहेगी। अत आपका मनचाहा समाज सचालित नही होगा, यह निश्चित है। सचालन नही रखना है, तो सहकारी-व्यवस्था स्थापित करनी है। लेकिन सचालन यानी शासन से मुक्ति तो तब मिलेगी जब आप अपने-अपने गाँव मे अपनी व्यवस्था अपने आप चला ले। इसीको गाधीजी स्वावलम्बी समाज और विनोबा ग्राम-राज कहते है। अपने गाँव में अपना राज हो जाय तो सरकारी नौकरशाही के राज से मुक्ति मिल जाय।

: ३ :

हिंसा से मुक्ति कैसे मिले ?

शासन के भयंकर संघटन के कारण जनता का शोषण होता है, इतना ही नहीं, बल्कि राज्य के बोझ के कारण उसका दमन भी होता है। इसलिए आज की दुनिया में राज्यव्यवस्था आशीर्वाद के बदले अभिशाप साबित हो रही है। तभी तो हम शासनमुक्त 'ग्रामराज' चाहते हैं। आज की दुनिया की हालत ऐसी है कि बिना शासनमुक्ति के इन्सान की जिन्दगी खतरे में पड़ गयी है। आपमें से बहुत से देहात के भाई काफी पढ़े-लिखे होंगे। आपको मालूम होगा कि जितने पढ़े-लिखे लोग हैं वे हर बात में विज्ञान की दुहाई देते हैं। यहाँ तक कि वे कहते हैं कि गांधीजी भले ही महात्मा रहे हों, लेकिन वे इस वैज्ञानिक-युग के आदमी नहीं थे। वे कहते हैं कि इस युग में गांधी की राह चलने लायक नहीं है। उनकी नजर में गांधीजी दुनिया को हजार वर्ष पीछे घसीट ले जाना चाहते थे। लेकिन मैं आपको बताना चाहता हूँ कि आज का युग वैज्ञानिक-युग है इसीलिए गांधीजी का जन्म हुआ, ताकि वे विज्ञान के संकट से मानव-समाज का उद्धार कर सकें।

आप मन में सोचते होंगे कि भला विज्ञान कहीं संकट का कारण हो सकता है? विज्ञान ने तो मनुष्य की तरक्की की है। यह ठीक है कि विज्ञान ने मानव-समाज का बड़ा कल्याण किया

है, लेकिन विज्ञान की तरक्की के साथ-साथ मनुष्य का मस्तिष्क अगर वैज्ञानिक नही हुआ तो वह विज्ञान ही अपने कत्ल का साधन बना लेगा।

एक कहानी है। एक आदमी ने एक बन्दर पाला था। उसने अपने पालतू बन्दर को बहुत से हुनर सिखा दिये थे। बन्दर भी उसका भक्त था और उसकी सेवा किया करता था। उस आदमी के पास एक तलवार थी। बन्दर ने अपने मालिक को तलवार से एक आदमी का गला काटते देख लिया था और उसने तत्काल यह बात सीख भी ली थी। दिन को जब मालिक सोता था तो बन्दर उसके शरीर पर से मक्खियाँ उडाता था। एक दिन एक मक्खी किसी तरह काबू मे नही आ रही थी और घूम-घूमकर मालिक के बदन पर बैठती थी। बन्दर को बहुत गुस्सा आया। उसने सोचा कि अब इसे मार ही डाला जाय। मालिक की परेशानी उसे सहन नही होती थी। उसने झट तलवार उठाकर मक्खी पर चला दी। मक्खी उस समय मालिक की गर्दन पर बैठी थी। मक्खी तो उड गयी, लेकिन मालिक की गर्दन कट गयी।

विज्ञान चाहे जितना उपयोगी हो, लेकिन वह बन्दर के हाथ पड जायगा तो खुद ही सारे मानव-समाज का ध्वस कर देगा। ऐसा क्यो होगा, इस पर आप विचार करें।

प्राचीनकाल से सनातन धर्म की शिक्षा 'अहिसा परमो धर्म' की रही है। लेकिन अन्याय के प्रतिकार के लिए या धर्म की स्थापना के लिए हिसा की भी इजाजत रही है। लोग आपसी झगडा निपटाने के लिए भी हिसा का प्रयोग करते रहे है। सिर्फ

हिंसा की इजाजत थी, इतना ही नहीं, बल्कि विशेष परिस्थिति में उसे आपद्धर्म भी माना गया था। धर्मयुद्ध में प्राण-त्याग करने से सशरीर स्वर्गलाभ होता है, ऐसी बात पढ़ने को मिलती है। पहले जब विज्ञान का युग नहीं था, तब ऐसी बातों से शायद विशेष नुकसान नहीं था। लेकिन आज ऐसी बात चल नहीं सकती।

गांधीजी ने दुनिया को अहिंसा का एक नया संदेश सुनाया। उन्होंने हर हालत में हिंसा के परित्याग की बात सुनायी, क्योंकि अगर नित्यधर्म और आपद्धर्म दोनों अहिंसा का न हो, तो 'परम-धर्म अहिंसा' यह सिद्धान्त सध नहीं सकता। अगर नित्य-जीवन में हिंसा की मान्यता रही तो उसकी परिणति अहिंसा नहीं हो सकती, यह आप आसानी से समझ सकते हैं। इसलिए महात्मा गांधी समाज के प्रत्येक मामले में अहिंसा का ही प्रयोग करने को कहते थे। वे दुनिया में एक अहिंसक-समाज कायम करना चाहते थे, क्योंकि वह समाज के जीवन को नैतिक एवं आध्यात्मिक बुनियाद पर संघटित करना चाहते थे।

आजकल पढ़े-लिखे लोगों को नैतिक तथा आध्यात्मिक बातों से कुछ नफरत हो गयी है। आपके यहां भी ऐसे बहुत-से पढ़े-लिखे व्यक्ति आते होंगे, जो कहते हैं कि नैतिक और आध्यात्मिक आधार की बात झूठी है यह सब पूंजीपतियों का ढोंग है, वे इस प्रकार की बातें करके ठगना चाहते हैं, इत्यादि। आप लोग भी कभी-कभी ऐसी बातों में बहक जाते हैं। इसलिए थोड़ी देर के लिए मैं गांधीजी के नैतिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्य की बात छोड़ देता हूं।

आप मेरे सामने बैठे है और मै आपसे बात कर रहा हूँ, यह तो वास्तविक चीज है न ? बहुत से अग्रेजी पढे भाई भी नही कह सकेंगे कि हम लोग आज जो एक साथ मिले है वह एक स्वप्न है। तो मै आपको बताना चाहता हूँ कि आज का युग वैज्ञानिक-युग है। इस युग मे यदि अहिसक-समाज की स्थापना न हुई तो परलोक की बात तो दूर, इस लोक में भी हम और आप जिन्दा नही रह सकेंगे। अर्थात् आज के जमाने में चाहे जिस कारण हो, अगर हिंसा की मान्यता रही तो मानव-समाज जिन्दा नही रह सकेगा। ऐसा क्यो ? यह मै आपको बताना चाहता हूँ।

आपको मालूम है कि विज्ञान के वरदान से दुनिया मे बहुत से भस्मासुरो का जन्म हो गया है। भस्मासुर की कहानी आपको मालूम है न ? शिवजी के वरदान से उसमे वह शक्ति आ गयी थी कि जिसके सिर पर हाथ रख दे वह भस्म हो जाता। भस्मासुर अपनी शक्ति की परीक्षा के लिए शिवजी पर ही अपना हाथ रखना चाहता था। उसी तरह आज की दुनिया में एटम बम, हाइड्रोजन बम और ऐसे-ऐसे बहुत से बमो का आविष्कार हुआ है, जिनको विज्ञान के वरदान से भयकर भस्मशक्ति प्राप्त हुई है। और मै आपसे कहना चाहता हूँ कि ये भस्मासुर अपनी शक्ति की परीक्षा के लिए आपकी टूटी झोपडियो पर अपने हाथ नही रखेंगे, बल्कि वे अपनी शक्ति की परीक्षा कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, न्यूयार्क, मास्को आदि बडे-बडे वैज्ञानिक केन्द्रो पर ही करेंगे। सोचने की बात है कि तब विज्ञान की क्या दशा होगी ?

श्रेणी के वीच का मामला तय करने मे हिंसात्मक तरीका चलता रहा तो क्या राष्ट्रो के वीच के मामलो मे अहिसा को अपनाना सभव होगा ? नित्य समस्या का समाधान हिंसा से करते रहना और आखिर मे एक देश और दूसरे देश के वीच की समस्या खडी होगी तो हिसा के अभ्यासी लोग मिलकर अहिसा का निर्माण करेगे, यह क्या सभव होगा ?

आत्मरक्षा प्रकृति का नियम है। इन्सान जो कुछ सोचेगा और करेगा उसकी वुनियादी भूमिका आत्मरक्षा की चेष्टा ही होगी। इन्सान को सवसे ज्यादा डर मरने से होता है। वह मरना नही चाहता। ऐसी हालत मे वह हर वात को जिंदा रहने की भूमिका के खाते मे लिखेगा और उस हिसाव से जिसमे नुकसान होगा उसे छोड देगा और जिसमें लाभ होगा उसे ही अपनायेगा। पुराने जमाने मे 'अहिसा परमो धर्म' के सिद्धान्त को मानते हुए अन्याय के प्रतिकार मे या धर्म-सस्थापन के लिए जो हिंसा की इजाजत रही है, वह भी सामूहिक आत्मरक्षा की ही थी। एक कस या जरासध और कुछ उसके साथी हजारो मनुष्यो पर जव हिंसा का चक्र चला रहे थे तव कुछ लोगो की हत्या करके हजारो लोगो को हिसा के आक्रमण से वचा लेने मे आत्मरक्षा की भूमिका में लाभ ही दीखता था, चाहे वह लाभ तात्कालिक ही क्यो न हो। लेकिन उसी आत्मरक्षा की भूमिका में आज झगडे निपटाने के लिए भी अगर हिसा का उपयोग किया जाय तो व्यापक विध्वस के कारण सामूहिक हानि का ही खतरा है। इसीलिए आज की परिस्थिति मे लोग इसे छोड देना चाहते है।

लेकिन हिंसा को छोडने की चिंता मे मनुष्य एक वुनियादी

गलती करता है। वह युद्ध तो नही चाहता लेकिन एक राष्ट्र की आन्तरिक समस्या के समाधान मे हिंसा को अनिवार्य मानता है। दुनिया मे लोग कहते है कि समाज के शोषण को खत्म करने के लिए तथा एक श्रेणी और दूसरी श्रेणी के भेद को मिटाने के लिए तो हिंसा का तरीका ही सफल हो सकता है। अहिंसा से समस्या का समाधान नही होगा। आन्तरिक समस्या के समाधान मे भी अगर हिंसा का उपयोग किया जाय तो उसीके विकास से अन्तर्राष्ट्रीय हिंसा की सृष्टि होगी। फलस्वरूप मानव-समाज का नाश हो जायगा।

डाक्टरो मे एक कहावत मशहूर है। किसी डाक्टर ने एक मरीज का आपरेशन किया था। जब वह बाहर निकला और लोगो ने मरीज का हाल पूछा तो उसने कहा कि आपरेशन तो सफल हुआ लेकिन मरीज टेबल पर ही मर गया। यही हालत हिंसा द्वारा समस्याओ के समाधान की बात सोचनेवालो की होगी। अगर हिंसा द्वारा समाज की किसी समस्या को हल करने की कोशिश की जाय, तो समस्या का शायद समाधान हो जायगा लेकिन उस समाधान का उपयोग करने के लिए ससार मे कोई मनुष्य ही नही रह जायगा। विज्ञान के कारण आज की दुनिया की स्थिति यही है।

यही कारण है कि महात्मा गाधी को आज सारा ससार युग-पुरुष मानता है। आपने देखा होगा कि दुनिया के किसी भी देश के प्रतिनिधि जब भारत मे आते है तो पहले गाधीजी की समाधि पर माला चढाते है। वे ऐसा केवल उनके महात्मापन के कारण नही करते, क्योकि अत्यत भौतिकवादी चीन के नेता भी गाधीजी

की समाधि पर फूल चढाते है। गाधीजी के प्रति ससार की यह श्रद्धा केवल इसलिए ही नही है कि उन्होने दुनिया मे मानवता के विकास के लिए समाज को नैतिक तथा आध्यात्मिक स्तर पर सघटन के उद्देश्य से सामाजिक अहिसा की बात कही है, बल्कि इसलिए भी कि उन्होने अहिसक प्रतिकार की बात कहकर युग-समस्या के समाधान का मार्ग भी उपस्थित किया है।

यह सब तो है फिर भी दुनिया के सारे राष्ट्रनायक शाति की खोज में भयकर युद्ध की तैयारी मे लगे हुए है। इस अन्तर्विरोध के कारणो को भी ढूंढने की आवश्यकता है। बात यह है कि मनुष्य की बुद्धि तो हिसा-मुक्ति की कायल है। परिस्थिति उसे ऐसा सोचने को बाध्य करती है। लेकिन उसका सस्कार हिसा का है। सदियो से मानव-समाज ने हिसा का यश-गान किया है। धर्म-युद्ध में प्राणत्याग करने से आदमी सीधे स्वर्ग मे चला जाता है, ऐसा दुनिया के सब लोग कहते रहे है। इसलिए यद्यपि बुद्धि अहिसा चाहती है तो भी सस्कार मनुष्य को हिसा की ओर ले जाता है। आपको मालूम है कि जब कभी बुद्धि और सस्कार का विरोध होता है तो साधारणत सस्कार की ही विजय होती है। एक साधारण मिसाल से यह बात आपकी समझ मे आ जायगी। आप लोग कभी बीमार पडते है तो वैद्य कह देता है कि खटाई और मिर्च का परहेज करो। आप बुद्धिपूर्वक उसे सही मानते है और कहते है कि ऐसा होना ही चाहिए। लेकिन खाना खाते समय आपका सस्कार थोडा-बहुत खटाई, मिर्च खिला ही देता है। शहर के पढे-लिखे लोग—सभी मानते है कि बिना छँटा हुआ चावल स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। ऐसा वे कहते भी है। लेकिन

उनकी थाली मे जब विना छँटे चावल का भात परोस दिया जाता है तो उनकी शक्ल वदल जाती है। वे एकदम नाक सिकोड लेते है, क्योकि वुद्धि चाहे जितना बिना छँटे चावल की बात करे, सस्कार उन पर विजयी हो ही जाता है। यह सही है कि ऐसे वहुत से सात्त्विक पुरुप होगे जिनकी वुद्धि सस्कार पर विजय प्राप्त करती है, लेकिन ऐसे लोग विरले ही होते है। उन्हे हम साधु, सत और ऋपि कहते है।

इस तरह आज के ससार की हालत यह है कि सब लोग चाहते है कि दुनिया का काम अहिसा से चले। लोग हिसा से मुक्त हो जायें, लेकिन उनका सस्कार उन्हे ढकेल ही देता है। इसलिए आपको सोचना होगा कि इन्सान के सस्कार मे से किस तरह हिसा निकालकर अहिसा की भावना पैदा की जाय। अतएव हमे कोई खास कोशिश नही करनी है कि लोग गाधीजी की अहिसा को समझे। वस्तुत इस बात के प्रचार की आवश्यकता नही है और न इसके लिए महात्मा गाधी जैसे युग-पुरुष को जन्म लेने की ही आवश्यकता थी। आज के वैज्ञानिक प्रगति के युग मे मनुष्य अहिसा को मानने के लिए मजबूर है। गाधीजी के जन्म की आवश्यकता तो दुनिया को हिसा-मुक्ति का रास्ता दिखलाने की थी, क्योकि अगर गाधी का जन्म न होता तो अहिसा की जरूरत महसूस करने पर भी उसे पाने का रास्ता न मिलने के कारण इन्सान इधर-उधर भटकता रहता। वह जिस विराट् वैज्ञानिक प्रगति के कारण हिसा को छोडने के लिए व्याकुल हो रहा है, उसी विज्ञान के कारण चर्खे की आवश्यकता को नही सोच पाता। बात यह है कि ऊपर से देखने से विज्ञान के साथ चर्खे का मेल

हृदय मे निरन्तर हिसा और प्रतिहिसा की क्रिया चलती रहती है, जिससे उसकी आदत और सस्कार मे हिसा की भावना जड पकड लेती है। ऐसी हालत मे अगर मनुष्य के सस्कार से हिसा निकालनी है तो यह जरूरी है कि इस समाज मे से शासन को समाप्त किया जाय। यानी समाज मे एक शासन मुक्त-समाज की स्थापना की जाय। यही कारण है कि गाधीजी कहते थे कि अहिसा के लिए "राजसत्ता" का लोप होना चाहिए।

: ४ :

जनशक्ति से चलें तभी स्वराज

आप देहात के लोगो को शासन-मुक्ति की वात नयी मालूम होती है, लेकिन दुनिया मे जो लोग शासन चलाते है वे भी अब शासन-मुक्ति की वात करने लगे है। आपने कम्युनिस्टो का नाम सुना होगा। जिन कम्युनिस्ट मुल्को मे सारा काम राज्य के जरिये से ही होता है, यानी जहाँ राज्य का संघटन सर्वव्यापी है, वहाँ भी लोग कहते है कि ससार की शाति के लिए शासन का लोप होना ही चाहिए। लेकिन वे मानते है कि शासन ही शासन को खत्म करेगा। इसलिए वे दिन-व-दिन उसे मजबूत करते जा रहे हैं। उनकी समझ मे यह नही आता है ऐसा कैसे हो सकता है। कोई आदमी अपने हाथ से अपना गला काट ले तो उसे पागल कहते है, क्योकि सृष्टि का नियम आत्मरक्षा है, आत्महत्या नही। अतएव अगर राज्यव्यवस्था को खत्म करना है तो यह काम राज्य-शक्ति द्वारा नही हो सकता। इसके लिए राज्य के वाहर की ही किसी शक्ति की जरूरत पडेगी।

राज-शक्ति के अलावा यदि कोई शक्ति है तो वह है जन-शक्ति। ऐसे तो पढे-लिखे लोग आपको समझायेंगे कि राज-शक्ति भी कोई अलग शक्ति नही है, क्योकि जन-शक्ति ने ही उसे पैदा किया है। लेकिन आप लोगो ने मुगल वादशाह के

जमाने की कहानी तो सुनी ही होगी कि कई बादशाहों के बेटों ने अपने बाप को कैद कर सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली थी। बेचारा बाप बेटे के बन्धन के नीचे पड़ा रहता था। उसी तरह राज्य-शक्ति यद्यपि जन-शक्ति की ही बेटी है, लेकिन उसने अपनी माँ को ही अपनी मुट्ठी के नीचे बाँधकर गिरफ्तार कर रखा है। आज बेचारी जन-शक्ति राज्य-शक्ति के नाग-फाँस में इस तरह बँधी हुई है कि उसके लिए हिलना-डोलना असम्भव हो गया है। इस बात को समझने के लिए आज की दुनिया में जितनी किस्मों की राज्य-व्यवस्थाएँ चल रही है, उन्हे समझना होगा।

आप लोगो ने पिछले महायुद्ध की कहानी सुनी होगी। हिटलर का भी नाम सुना होगा। वह और उसके साथी जिस प्रकार की राज्य-व्यवस्था चलाते थे, उसे 'तानाशाही' कहते है। उसका नाम है 'फासिस्टवाद'। रूस आदि देशो में जो व्यवस्था चलती है, उसे कम्युनिस्टवादी राज्य कहते है। वह भी तानाशाही की ही एक किस्म है। तानाशाही मुल्को में जनता को कोई स्वतत्रता नही रहती। जीवन के हर हिस्से मे राज्य का दखल रहता है। ऐसे राज्य को लोग 'सर्वाधिकारी राज्य' कहते है। सर्वाधिकारी राज्य में सारा अधिकार राज्य का होता है और जनता उनके डर से यत्र जैसी चलती रहती है। लोग कहते है कि ऐसे राज्य में प्रजातत्र नही है। वे प्रजातत्र की कुछ दूसरी ही कल्पना करते है। हिन्दुस्तान मे आज जैसा शासन चलता है उसीको राजनैतिक भाषा में 'प्रजातत्र' यानी 'जनता का राज्य' कहते है। इग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशो मे इसी प्रकार की राज्य-

व्यवस्था है, जिसे वे 'पार्लमेण्टरी राज्य-व्यवस्था' कहते है। ऐसे राज्यो को वे 'स्वराज्य' कहते है, लेकिन गाधीजी उसे स्वराज्य नही मानते थे। वे कहा करते थे कि इग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशो मे 'स्वराज्य' नही है क्योकि उनकी राय मे आम लोग वोट देकर जो पार्लमेण्टवाली सरकार बनाते है, वह वास्तविक 'स्वराज्य' नही है। वह तो एक वैधानिक प्रजातत्र मात्र है। यानी वह एक 'किताबी स्वराज्य' है, 'अमली स्वराज्य' नही।

मेरी इस बात को सुनकर पढे-लिखे लोग परेशान होते हैं। वे कहते है कि फासिस्टवादी, कम्युनिस्टवादी राज्यों को सर्वाधिकारी तो अवश्य कहा जा सकता है लेकिन पार्लमेण्टरी राज्य को सर्वाधिकारी राज्य कैसे कहा जाय। पार्लमेण्टरी राज्य के इतिहास पर और उसकी दिन-दिन होनेवाली प्रगति पर अगर गहराई से गौर करेंगे तो मेरी बातो को आप ठीक समझ जायँगे।

पुराने जमाने मे दुनिया मे राजाओ का राज्य चलता था। राजा के बाद उसका बेटा राजा होता था। जनता पर कौन राज्य करे, इसका निर्णय स्वय जनता नही करती थी। इसलिए राजा चाहे जिस तरह से काम करे उस पर जनता बोल नही सकती थी। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर राजा धीरे-धीरे मनमाना हो गया। इससे प्रजा को तकलीफ हुई। प्रजा ने सोचा कि उस पर किसी गैर का राज्य नही होना चाहिए, बल्कि कौन राज्य चलाये इसका फैसला वह खुद कर ले, तभी दुनिया मे शक्ति कायम होगी। इस विचार से जनता ने राजा के हाथ से राज-दड छीनकर अपने चुने हुए प्रतिनिधियो के हाथ मे दे दिया। इससे एक नयी परिस्थिति पैदा हुई।

राजा के हाथ से प्रतिनिधि के पास शासन की बागडोर चली जाने से जनता की आशा बढी। कहावत है—'सैयाँ भये कोतवाल अब डर काहे का।' जब अपना स्वामी ही कोतवाल होता है तो दरवाजा खोलकर निश्चिन्त सो जाने की इच्छा कुदरती होती है। जब जनता के सैयाँ यानी उसके अपने आदमी के हाथ मे राज-दड आ गया तो सभवत जनता को आशा बँधी कि प्रतिनिधि-मडल राजा से अधिक उनकी व्यवस्था चलायेगा।

मनुष्य का स्वभाव होता है कि उसके हाथ मे अधिकार आने पर वह उसे बढाना चाहता है। इसके अनुसार नये प्रतिनिधि-मडल की आकाक्षा भी अधिकार बढाने की ही रही। इस प्रकार एक ओर से जनता द्वारा अधिकार से अधिक दायरे में राज्य-व्यवस्था की चाह और दूसरी ओर से प्रतिनिधि-मडल द्वारा अधिक-से-अधिक अधिकार-वृद्धि की आकाक्षा, इन दोनो के मिल जाने से दिन-दिन जन-जीवन के अधिकाधिक हिस्से पर शासन का दखल बढता चला जा रहा है। और आज तो राज्य का नाम सर्वकल्याणकारी राज्य रखा जा रहा है। यानी आजकल आप लोगो के विचार में राज्य ही हर समस्या का जिम्मेदार है, इस सिद्धान्त ने मन में घर कर लिया है। लेकिन आपने इस सिद्धान्त पर कभी गौर भी किया है क्या?

सर्वकल्याणकारी राज्य का महत्त्व क्या है? उसका मतलब तो आप रोज पटना, लखनऊ, दिल्ली की सडको पर देखते ही है।

देश के निवासी भूख और बीमारी से परेशान है, उसके लिए लोग लम्बे-लम्बे जुलूस निकालते है। राज-भवन के सामने नारे लगाते है। 'रोजी-रोटी दो, नही तो गद्दी छोड दो।' इसका

मतलव यह है कि आपकी राय मे एक आदमी भी भूखा रहे तो राज्य जिम्मेदार, एक आदमी वेकार रहे तो राज्य जिम्मेदार, यहाँ तक कि पोखरे से पानी भरकर लाते समय यदि आपके घर की वहू-वेटी के पैर में काँटा गड जाय तो भी राज्य जिम्मेदार, क्योकि सडक को साफ रखने की जिम्मेवारी भी राज्य की है! आप विचारे तो सही। एक भी आदमी भूखा न रहे, यदि इस वात की जिम्मेदारी राज्य पर है, तो उस राज्य को यह अधिकार भी देना होगा कि वह देखे कि कोई व्यक्ति अपनी पाचन-शक्ति से एक दाना भी ज्यादा तो नही खा रहा है? यदि यह अधिकार उसको नही मिलेगा, तो सवको रोटी देने की जिम्मेवारी भी उस पर नही रह सकती। अर्थात् अगर जनता के सर्वकल्याण की तथा सारी समस्याओ की जिम्मेवारी राज्य पर रखना है, तो समाज के सर्वस्व पर अधिकार भी उस राज्य के ही हाथ मे दे देना होगा। सर्वस्व के अधिकारी राज्य को ही सर्वाधिकारी राज्य कहते हैं न! इसका मतलव यह है कि आज दुनिया मे जितने प्रकार की राज्यव्यवस्थाएं चल रही हैं, सव सर्वाधिकारी है। यही कारण है कि गाधीजी कहते थे कि ससार मे कही भी स्वराज्य नही है।

अगर राज्यशक्ति यानी शासन का दायरा सर्वव्यापक है तो उसके वाहर की शक्ति यानी जन-शक्ति के सामने फिर सवाल उठता है कि वह किस छोर से उसे तोडना शुरू करे। जव शासन-सत्ता ने सारे समाज को पूर्णरूप से घेरे मे वॉध लिया है तो यह सवाल वहुत जटिल हो जाता है, क्योकि घेरे से वाहर निकले विना उसे विघटित करना कठिन है। इसलिए आपको शासन को समाप्त करने के तरीको पर विचार करना ही होगा।

: ५ :

'सीता-राम' : पूँजी के नाग-पाश से बचने का नया मंत्र

अगर आप चाहते है कि किसी ऐसे मकान को तोड दिया जाय जो दूसरे के कब्जे में है, तो पहले आपको उस मकान पर कब्जा करना होगा, तभी उसे विधिपूर्वक तोड सकेगे। इसी प्रकार अगर आप शासन को विघटित करना चाहते है तो पहले आपको उस पर कब्जा लेना होगा। लोग कहेगे कि जब जनता ही वोट देकर शासन चलाने के लिए अपने प्रतिनिधि भेजती है, तो प्रतिनिधि के जरिये शासन पर जनता का कब्जा तो है ही। फिर कब्जा लेने का सवाल कहाँ उठता है? मैने पहले ही कहा है कि यह कब्जा केवल वैधानिक है, वास्तविक नही है अर्थात् वह किताबी है, असली नही है। असली कब्जा तभी माना जा सकता है, जब उस पर जनता का सीधा नियत्रण हो। गाधीजी के साथियो ने आज से ३० साल पहले जब उनसे पूछा था कि आपकी राय मे सीधे कब्जे का मतलब क्या है, तो उन्होने हमे वैधानिक स्वराज और असली स्वराज का मतलब बताया था। उन्होने कहा था कि जितने बालिग स्त्री-पुरुष है और जिन्होने शरीरश्रम द्वारा राज्य की सेवा की है, उन सबके वोट से जब

सरकार वनेगी, तभी स्वराज्य होगा। लेकिन साथ-साथ यह भी वताया था कि केवल इतने से ही वास्तविक स्वराज्य नही होगा। उन्होने आगे कहा था कि केवल कुछ लोगो के गद्दियो पर चले जाने से ही स्वराज्य नही होता है, वल्कि अधिकार का दुरुपयोग होने पर प्रत्येक व्यक्ति द्वारा सीधा विरोध करने की शक्ति मिलने मे ही स्वराज्य है।

अतएव शासन-सत्ता को तोडने के लिए प्रथम आवश्यकता यह है कि जनता मे ऐसी शक्ति पैदा हो, जिससे अधिकार का दुरुपयोग होने पर वह अधिकारी के विरोध में विद्रोह कर सके। यह तभी हो सकता है, जब जनता की परिस्थिति विरोध करने के अनुकूल हो। परिस्थिति अनुकूल न होने पर इच्छा रहते हुए भी विरोध करना कठिन होता है। आज तो परिस्थिति ही प्रतिकूल है, क्योकि आज जनता की जान अधिकारी की मुट्ठी मे है। यह कैसे है, इसे हम अव देखेंगे।

आज ससार मे मनुष्य के जिन्दा रहने की जितनी सामग्री है, उसके उत्पादन की पद्धति पूंजी पर आश्रित है। इसका मतलव यह है कि लोगो की जान पूंजी पर लटकी हुई है। कहावत है कि "जिसके हाथ मे जान, उसके हाथ में आन।" जव अधिकारी के हाथ मे जनता की जान रहेगी, तो जनता चाहे जितनी शक्तिशाली हो, वह अधिकारी का विरोध नही कर सकेगी।

वचपन में एक कहानी पढी थी। एक राक्षसपुरी के तमाम राक्षसो ने अपनी-अपनी जान एक भ्रमर के अन्दर रखकर उसे एक स्थान पर सुरक्षित रख दिया था। एक दुवले-पतले राजकुमार ने उनकी नगरी मे पहुँचकर उस भ्रमर को अपनी मुट्ठी में कर

लिया था। एक-एक राक्षस एक ग्रास मे उस राजकुमार को खाने की शक्ति रखता था, फिर भी उनकी जान राजकुमार को मुट्ठी मे होने के कारण वे सबके सब उसके गुलाम बन गये थे।

वस्तुत जान मनुष्य की सबसे प्यारी वस्तु है। ससार मे सतान के लिए माता का प्रेम सबसे ऊँचा है। फिर भी इतिहास में यह बात लिखी है कि ऐसे मौके अक्सर आते है, जब अपनी जान बचाने के लिए माताएँ भी अपने बच्चो को सकट मे छोडकर भाग जाती है। तो साधारण जनता के लिए स्वतत्रता चाहे जितनी प्यारी हो,जब उसे आजादी और जान में से एक को चुनना होगा तो वह आजादी को छोडकर जान को ही चुनेगी। यह सही है कि ऐसे बहुत से महापुरुष निकले है, जिन्होने आजादी के लिए जान दे दी है। लेकिन ऐसे लोगो को आप शहीद कहते है और उनकी पूजा करते है। अर्थात् ऐसे लोग विरले होते है। इसलिए अधिकार के दुरुपयोग का विरोध करने की शक्ति अगर चाहिए तो ऐसी स्थिति पैदा करनी होगी, जिससे जनता की जान अधिकारी की मुट्ठी में न रहे।

ऐसी स्थिति पैदा करने के लिए एक आर्थिक क्रान्ति की जरूरत है। इसका अर्थ यह है कि पूंजी-आधारित उत्पादन को बदलकर श्रम-आश्रित उत्पादन पद्धति कायम करनी है। दूसरे शब्दो में पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति बदलकर श्रमवादी उत्पादन-पद्धति कायम करनी होगी। लोग कहेगे कि इसके लिए पूंजी के बाहर जाने की जरूरत क्या है? राज्य एक वस्तु है और पूंजी दूसरी वस्तु है। लेकिन आपको मालूम है कि आज ससार मे राज्य और पूंजी अलग-अलग नही रह गयी है। संसार मे दो

ही प्रकार की व्यवस्थाएँ चलती है। कही राज्य के हाथ में पूंजी है, तो कही पूंजी के हाथ मे राज्य है। दोनो मे फर्क ही क्या है? पूंजी और सत्ता के गठबंधन के जो दोष है, वे दोनो मे है।

अर्थशास्त्र के पडित कहेगे कि आपकी पूंजी और श्रम की बात में केवल शब्द का ही फेर है। दोनो तो एक ही चीज है, क्योकि पूंजी भी कोई आसमान से नही टपकती है, श्रम को ही जमा करके पूंजी बनी है। यह बात सही है,लेकिन उसमे फर्क है। यह सही है कि श्रम जमा करके पूंजी बनती है लेकिन वह पूंजी तभी बनती है, जब श्रम मनुष्य के शरीर से बाहर निकलकर एक जगह इकट्ठा होना है। तो पूंजी चाहे घनीभूत श्रम ही क्यो न हो, वह मनुष्य-शरीर के बाहर की चीज है। इसलिए श्रमिक के बाहर के लोग उस पर कब्जा कर लेते है। यद्यपि पूंजी की पैदाइश श्रम से ही हुई है, फिर भी जिस प्रकार-राज्य-शक्ति ने जन-शक्ति को बाँध रखा है, उसी तरह पूंजी ने श्रम को अपना दास बना रखा है। यही कारण है कि दुनिया पूंजी की गुलाम हो गयी है और पूंजी की गुलाम होने के कारण ही वह राज्य के नाग-पाश मे जकड गयी है। इसलिए मै कह रहा था कि जनता की आन की रक्षा के लिए उसकी जान को पूंजी के बाहर निकालना जरूरी है। इसीलिए पूंजी-आश्रित उत्पादन-पद्धति बदलकर श्रम-आश्रित उत्पादन-पद्धति कायम करने की आवश्यकता है। इसका मतलब यह है कि अगर अहिसक समाज-रचना के लिए शासन-मुक्त समाज कायम करना जरूरी है, तो इसके लिए पहली आवश्यकता पूंजी-मुक्त आर्थिक जीवन है। यही कारण है कि विनोबा काचनमुक्ति की बात पहले

करते है और यह कहते है कि भूमिदान-यज्ञ हमारी क्रान्ति का पहला कदम है। तमाम उत्पादन का मूल साधन भूमि है, इसलिए जरूरत इस बात को है कि शासन-मुक्ति की क्रान्ति के लिए पहले भूमि को पूंजी के हाथ से निकालकर श्रम के हाथ में लाया जाय। इसीलिए हम नारा लगाते है कि "भूमि किसकी, जो जोते उसकी।"

अतएव आज हमें सबसे पहले देश की भूमि-समस्या को हल करना होगा। आज पैसा लगाने से भूमि मिलती है। इन तरीको को हमें बदलना होगा और ऐसा करना होगा कि जमीन की पैदावार उसीको मिले, जो उस पर श्रम करता है।

भूमि के बॅटवारे के बारे मे एक मूलभूत सिद्धान्त भी समझ लेना चाहिए। अगर भूमिदान-यज्ञ अहिंसक समाज यानी शासन-मुक्त समाज की स्थापना का पहला कदम है, तो शासन के बिना समाज की सुव्यवस्था चले, ऐसा भी होना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि आज व्यवस्था के लिए जो ऊपर से समाज का सचालन और नियत्रण चल रहा है, उसे बदल देना होगा। और सचालन-प्रथा के बदले सहकारी यानी साझेदारी-प्रथा कायम करनी होगी। साझा मनुष्य का होता है, सम्पत्ति का नही। इसलिए भविष्य के समाज में सब लोग मिल-जुलकर श्रम करेंगे और श्रम से जो कुछ पैदावार होगी, उसका उपभोग करेंगे। ऐसे समाज का रूप एक परिवार का होगा। परिवार में उत्पादन के साधन तथा सम्पत्ति सारे घर की होती है, किसी एक की नही। अत भूमि का मालिक कोई व्यक्ति नही होगा, बल्कि सारा गांव होगा। भूमिदान-यज्ञ, भूमि का 'ग्रामीकरण' करने के लिए है।

भूमि का ग्रामीकरण करके उस पर जो पैदा करेगा, पैदावार उसकी होगी। तभी वह श्रमवादी उत्पादन-पद्धति हो सकेगी। लेकिन भूमि पर तो केवल कच्चा ही माल पैदा होगा। उसका पक्का माल बनाने के लिए उद्योग चाहिए। तो आप विचारे कि श्रमवादी आर्थिक व्यवस्था मे उद्योग का स्वरूप क्या होगा? उसे पूंजी के हाथ से निकालकर श्रम के हाथ मे देना होगा। आज केन्द्रित उद्योगो के अधीन जो बडे-बडे कल-कारखाने और उद्योग चल रहे है उनके बदले मे आपको घर-घर और गॉव-गॉव मे चर्खा-कर्घा, ढेकी-चक्की, कोल्हू-घानी और दूसरे गृह-उद्योग और ग्रामोद्योग चलाने होगे। इसलिए भूमि-दान-यज्ञ आन्दोलन के साथ-साथ केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार के आन्दोलन को भी शामिल किया गया है और इसलिए विनोबाजी भूमि-दान-यज्ञ और ग्रामोद्योग को अभिन्न मानते है। वे कहते हैं कि मेरे लिए ये दोनो 'सीता-राम' जैसे है।

लेकिन आज हम लोग इस अत्यत जरूरी प्रोग्राम के बारे मे उदासीन है। यह आन्दोलन आज प्रस्ताव के कागज मे ही पड़ा है। आप इसे अमल में नही लाते है। मै आपसे कहना चाहता हूँ कि इस आन्दोलन के बिना भूमि-दान-यज्ञ भी गुमराह हो जायगा।

केन्द्रित उद्योग के बहिष्कार द्वारा उद्योगो का विकेन्द्रीकरण किये बिना भूमि उलटकर पूंजी की मुट्ठी मे चली जायगी, क्योकि वैसी स्थिति मे भूमि-केन्द्रित उद्योगो को कच्चा माल सप्लाई करने के लिए उसकी सेविका, दासी हो जायगी। जब उद्योग पूंजी के हाथ मे रहेगा तो सम्भवत उसे राज्य की मुट्ठी मे रहना पडेगा और उसके लिए राज्य द्वारा केन्द्रित राष्ट्रीय

योजना बनेगी। राष्ट्रीय योजना केवल उद्योगो के लिए नहीं बन सकती। कच्चे-माल का उत्पादन भी उस योजना का अग होगा। इसका मतलब यह है कि भूमि का उत्पादन भी ऊपर से राज्य द्वारा नियत्रित होगा। फिर भूमिदान-यज्ञ शासन-मुक्ति का पहला कदम होगा, ऐसा आप नही कह सकते। इतना ही होगा कि राज्य का दखल सीधे भू-श्रमिक पर होगा। भू-स्वामी की मध्यस्थता खतम हो जायगी। ऐसी परिस्थिति मे राज्य का नाग-पाश बढेगा, घटेगा नही। तो केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार के बिना भूमिदान-यज्ञ का आन्दोलन समाज को शासन-मुक्ति की ओर न ले जाकर सर्वाधिकारी राज्य-सघटन मे मदद पहुँचायेगा, अत. हम सचेत हो जायँ।

केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार से सहज ही पूंजी का निराकरण हो जायगा। पूंजी किसे कहते है, आपको मालूम है न? अर्थ-शास्त्र मे पूंजी और सपत्ति, ये दो चीजे अलग-अलग मानी गयी है। लेकिन वस्तुत वे दोनो एक ही चीज है। मान लीजिए, आपने अपनी पेटी मे एक हजार रुपया रख दिया है और उसे खर्च करते है, तो उसे आप सम्पत्ति कहेंगे। लेकिन अगर आप उसी रुपये को व्याज पर चला देते है और उसको लगाकर नयी सम्पत्ति पैदा करते है तो वह हजार रुपया आपकी पूंजी हो जायगी। मतलब यह हुआ कि जिस सम्पत्ति को सन्तान होने लगती है वह पूंजी हो जाती है। केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार से बडे-बडे कारखानो मे जो पूंजी लगी हुई है, उससे नयी पूंजी पैदा नही हो सकेगी, क्योकि कारखाने बन्द हो जायेंगे। इस तरह नि सतान हो जाने पर वह पूंजी फिर सम्पत्ति में बदल जायगी।

लोग कहते है कि नि सतान की गति नही है। वह निर्वंश हो जाता है। उसका वश तभी तक चलता है, जब तक उसकी खुद की आयु रहती है। तो पूंजी के सम्पत्ति मे वदलने से जव वह खर्च होने लगेगी, तो वह क्रमश समाप्त होती जायगी। लेकिन कोई क्रान्तिकारी उसको अपने आप समाप्त होने तक इन्तजार नही कर सकता। इसलिए सत विनोवा उसकी आयु घटाने के लिए सम्पत्ति-दान-यज्ञ की वात करते है, जिससे जन-जीवन जल्दी से पूंजी के कब्जे से मुक्त होकर श्रम के आधार पर प्रतिष्ठित हो सके, ताकि इस प्रकार से पूंजी के वाहर निकलकर जनशक्ति-राज्य को विघटित करने की ताकत पा सके। . . .

: ६ :

चार लगाओ, एक पाओ

इस प्रकार से आर्थिक क्रान्ति द्वारा वास्तविक लोकतन्त्रीय राज्य कायम होने के सिलसिले से ही शासन के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो सकती है। वह किस तरह हो सकती है, इस पर अब हम विचार करें।

जैसा कि मैंने बताया है, इसकी शुरुआत तो भूमिदान-यज्ञ से ही होगी। फिर भूमि का दान, प्राप्ति, वितरण, केन्द्रित उद्योगो का बहिष्कार, ग्रामोद्योगो की स्थापना आदि कार्यक्रम चलाना होगा। अब प्रश्न यह है कि ये सब कार्यक्रम किस प्रकार चले। अब तक जो काम चलता रहा, उसे आप ग्रामवासी अपनी ओर से नही चलाते थे। हम लोग कुछ सार्वजनिक कार्यकर्ता गाँव-गाँव मे आते है और आपके लिए कुछ काम कर देते है। किसी गाँव में आपसे सहानुभूति और सहयोग मिलता है और किसी गाँव में नही मिलता है। भूमि-प्राप्ति तो होती है, लेकिन आप लोग विचार समझकर लोगो से नही माँगते है। उसी तरह से अगर आज गाँवो मे कुछ ग्रामोद्योग भी चलते है, तो हम लोग अखिल भारतीय या प्रान्तीय या जिला सस्थाओ की ओर से उसे चलाते है। गाँव के लोग जैसे किसी भी व्यापारी कारोबार में काम करते है, उसी तरह हमारे ग्रामोद्योग में काम करते है।

आपकी ओर से कोई प्रेरणा नही है। आप भी समझते है कि चलो, गाँव की वेकारी दूर करने के लिए ग्राम-उद्योग चलाकर हम लोगो ने आप पर वहुत उपकार किया है। सम्पत्तिदान के वारे मे तो आप समझ ही वैठे है कि हम शहर की सम्पत्ति के ढेर मे से कुछ खुरचकर ला देंगे। हम जब गाँव में आते है, तो आप लोग दरख्वास्त पेश करते है कि गाँव मे कुँआ वनवा दीजिये, सड़क वनवा दीजिये, स्कूल वनवा दीजिये आदि। और यदि आपको दरख्वास्त के मुताविक कार्य न हुआ तो शिकायत करते है। इसका मतलव यह है कि आप जनता का राज्य अर्थात् गाधी का स्वराज्य चाहते ही नही।

अव जरा विचार तो करे कि अगर इसी तरह वाहर से आकर काम करना हो तो राज्य की ओर से वैसा हो ही रहा है, फिर हम लोगो की क्या जरूरत? राज्य की ओर से सारा काम होने का मतलव आपके लिए कितना भारी वोझ है, यह तो मै पहले ही वता चुका हूँ। इतने वोझ से आपको सतोष नही होता है; तो लोगो का नया वोझ अपने सिर पर हम लादना चाहते है क्या? राज-सेवको की भारी फौज आपके गॉव मे आपके कल्याण के लिए तो आती ही है, उसके अलावा जन-सेवको की भी फौज चाहिए क्या? आप खा-पीकर जिदा भी रहना चाहते है या अपनी सारी पैदावार तरह-तरह के सेवको को खिलाने में ही खत्म करना चाहते है? आप चाहते है कि सरकार का पूरा वोझ रहे और फिर हम-आप सरकार के वीच के दलाल वनें? इन दरख्वास्तो का मतलव क्या है, इसे हम सोचें।

मै एक वार वाढ-पीड़ित क्षेत्रो में पद-यात्रा कर रहा था।

एक गाँव मे सरकारी अस्पताल था। वहाँ का डाक्टर काफी अच्छा आदमी था। मैने दरियाफ्त किया तो मालूम हुआ कि अस्पताल में चौबीस हजार रुपये सालाना खर्च होते है। चौबीस हजार रुपये के बजट मे दवाओ का मद दो ही हजार का था, बाकी तनख्वाह और दूसरे फुटकर कामो में खर्च होता था। ये चौबीस हजार रुपये आते कहाँ से है? लोगो की ही जेब से। इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम दरख्वास्त देकर अपने गाँव में अस्पताल खुलवाना चाहते है, तो दो हजार रुपये की दवा के लिए चौबीस हजार रुपया देना होगा। केवल चौबीस हजार ही नही, बल्कि यह चौबीस हजार रुपया हमसे वसूल करने के बहाने गाँव से लेकर दिल्ली तक जो मोटी-मोटी तनख्वाह-वाले कर्मचारी तैनात है, उनका तथा अस्पताल खोलने और उसका मुआइना करने आदि के लिए जिन अफसरो की फौज तैनात है उन सबका वेतन, सफर-खर्च आदि भी आपको ही देना पडेगा। वह भी पाँच-छ हजार रुपये से कम न होगा। अर्थात् दो हजार रुपये की दवा पीने के पीछे आप तीस हजार रुपये खर्च करते है। उसी तरह स्कूल के पीछे यदि पाँच हजार रुपये का खर्च है तो उसके लिए हमको कम-से-कम दस हजार रुपया देना ही होगा।

अतएव अगर हम चाहते है कि शासन-मुक्त समाज यानी जनता का स्वराज्य हो, तो इस सारे आन्दोलन का स्वरूप ही बदलना होगा। इसके लिए गाँव-गाँव मे गाँव की अपनी समिति बनानी होगी और आन्दोलन के सिलसिले से जो काम चलता है, उसे आपको अपनी प्रेरणा, नेतृत्व, व्यवस्था तथा आन्तरिक साधनो से ही चलाना होगा। पुराने जमाने में ऐसा ही होता था।

गाँव मे पुरोहित के रूप मे अपना नेतृत्व होता था। गाँव के लोग यज्ञ मे आहुति चढाते थे और अपने कल्याण का सारा काम अपने आप कर लेते थे। कभी सयोग से कोई राक्षस गाँव के यज्ञ को नष्ट करना चाहता था तो वे राजा के पास पहुँचते थे। राजा को इतनी सेवा के लिए एक-दो आने बीघा लगान भी दे देते थे। गाँव का बाकी प्रवध वे खुद करते थे और अपनी सम्पत्ति अपने आप उपभोग करते थे। बाहरी सेवको को खिलाने-पिलाने मे ही खत्म नही करते थे। यह जो आज का सिलसिला चल रहा है, उसे तो अग्रेजो ने देश को चूसने के लिए शुरू किया था। मै यहाँ कह देना चाहता हूँ कि जब तक आप हम सिलसिला जारी रखेंगे तब तक हमारा शोषण होता ही रहेगा।

लोग कहेगे कि सदियो के शोषण और निर्दलन के कारण हम बेहोश हो गये है। अपने आप काम चलाने की आदत न होने से हमारी बुद्धि मद पड गयी है। इसलिए पुराने जमाने के लोगो जैसी अब हमारी योग्यता नही रही। हम क्या करे और कैसे करें, यह सब सूझता ही नही। इसलिए हमको रास्ता बताने के लिए आप जैसा नेता तो चाहिए ही। मै इस बात को मानता हूँ कि आपको हमारी सेवा की जरूरत है। लेकिन जरूरत भर ही हमसे काम लीजिये। हमसे रास्ता पूछें, लेकिन काम अपने आप करें। आज तो हम आपका सारा काम कर देते है। पर जैसा दूसरे लोग आपकी सेवा के बहाने सदियो से आपको चूसते रहे है, उसी तरह हम भी आपका ही खाते रहेगे। दूसरे की कमाई खाने की आदत पड जानेपर हमारा पेट दिन-ब-दिन बढता ही जायगा। कहावत मशहूर है 'मुफ्त का चन्दन घिस मेरे लाला!'

इसलिए विनोबाजी देश की आजादी कायम रखने की दृष्टि से ग्राम-राज्य की स्थापना का जो क्रान्तिकारी सदेश सुना रहे है उसे चलाने की जिम्मेदारी आपको हा लेनी होगी, क्योकि यह क्रान्ति आपकी है। परेशानी हमारी नही, आपकी है। हम तो आप लोगो के मत्थे अच्छा जीवन बिता ही रहे है। इसलिए आप जिम्मेदारी को किस तरह चलायेगे, यह मै आपको बताना चाहता हूँ।

: ७ :

स्वराज की पहली सीढ़ी : ग्रामोदय-समिति

गाँव-गाँव मे ग्राम-समिति वनानी होगी। इसका नाम ग्रामोदय समिति या ग्राम-राज्य समिति रखें या कोई भी नाम रखें, वह आपकी ही होगी। समिति को गाँव की आर्थिक जाँच करनी होगी। कितनी और कैसी जमीन है, कितने भूमिहीन हैं और उनके लिए कितनी जमीन चाहिए, यह सब मालूम करना होगा। फिर जितने लोग स्वराज्य चाहते है वे सब एक साथ जत्था बनाकर भूमिवानो मे भूमि माँगने जायँगे तथा उसे भूमिहीनो मे वितरण करेंगे। जमीन जो मिलेगी, उसमे कुछ परती, कुछ आवादी भूमि होगी। आप जिन भूमिहीनो को भूमि देंगे, उनके लिए साधन-दान माँगना होगा, ताकि वे उस पर काम कर सके। गाँव मे साधन बहुत नही है, तो भी जो कुछ मिल सके, लेने की कोशिश करनी होगी। इसके वाद एक-एक अंचल से कुछ लोग शहरो मे जाकर सम्पत्ति-दान माँगने का काम करेंगे। आप कहेंगे कि शहरो मे जाकर माँगने की फुरसत कहाँ ? फुरसत तो आपके पास भरपूर है। गाँव के सारे धधे, इन्तजाम आदि सब तो शहरवाले ले गये है। फुरसत के कारण ही तो आप कगाल हुए है। जितना समय शहरो में जाकर मुकदमा लड़ने में विताया जाता है, उतना समय अगर सम्पत्तिदान-यज्ञ में लगाया जाय

और गाँव का झगडा गाँव मे ही निपटा ले तो जितनी सम्पत्ति की कचहरी-देवता के कदमो पर श्रद्धाजलि अर्पित करते है, वह सब बच जाय। उस सम्पत्ति तथा साधनदान से गाँव के सभी भूमिहीन आबाद हो जायँ। ये सब काम करने के लिए आप हमारी सलाह और मार्ग-दर्शन ले सकते है और उतने भर के लिए हमको खिला भी सकते है। इन कामो को चलाने की अगर आपमें योग्यता नही है तो कई गाँव मिलकर शिक्षण-शिविर चला सकते है और उसमे हम लोगो को बुला सकते है।

इतने से ही आपकी समस्याओ का अन्त नही होगा। ऊपर का काम पूरा करने के बाद भूमि का ग्रामीकरण करना होगा। यानी सारी भूमि ग्रामराज्य के हाथ मे लानी होगी। फिर जरूरत और मेहनत की क्षमतानुसार उसे लोगो में बाँटना होगा, जिससे वे उस पर पैदा करके गुजर कर सके। फिर इस बात की सूची बनानी होगी कि गाँव मे पूँजीवादी उद्योगो का कौन-कौन माल इस्तेमाल होता है। उनका उसी तरह बहिष्कार करना होगा, जिस तरह आजादी की लडाई के दिनो मे हम विदेशी माल का बहिष्कार करते थे। उसके स्थान पर ग्रामोद्योगो का सगठन करना होगा।

यह सब काम करने के लिए गाँव के लोगो की योग्यता बढानी होगी। इसलिए शिक्षा की व्यवस्था भी ग्राम-समिति को ही करनी होगी। जो लोग दिन भर मेहनत करके खाते है, उनके लिए रात्रि-पाठशाला और बाकी के लिए बुनियादी-शिक्षा-शाला चलानी होगी।

आप कहते है कि देहातो मे साधन ही क्या रह गये है, तो मै शहरो से साधन-दान-यज्ञ का रास्ता बताता हूँ। किन्तु देहात मे एक वहुत वडा साधन मौजूद है। दर असल वही आपके लिए एकमात्र पूंजी है। वह है शरीरश्रम की पूंजी। आपकी समिति को गाँव मे श्रमदान का अनुष्ठान चलाना होगा। इससे गाँव की जमीन तोडना, कुँआ वनाना, तालाव खोदना, वाँध वाँधना आदि सभी काम करना होगा। इससे गाँव का सगठन तो मजबूत होगा ही, एक साथ काम करने की वजह से अमीर-गरीब का भेद-भाव भी मिटेगा। वैसे गाँव मे कोई अमीर है ही नही। उनकी वस्ती तो शहरो मे ही है। गाँव मे तो कुछ कम गरीव और कुछ ज्यादा गरीव है। फिर भी उनमे कुछ भेद-भाव है ही। श्रम-दान-यज्ञ इस छोटे भेदासुर का नाश करके ग्राम-राज्य कायम करने की ओर ले जायगा।

इस प्रकार आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम द्वारा ग्राम-समिति की योग्यता वढेगी और उसका सगठन मजवूत होगा। फिर जव समितियो मे इतना आत्मविश्वास हो जायगा कि राज्य द्वारा सचालित कई विभागो का काम वे अपने आप चला सकती है तो उतने विभागो के लिए वे शासन से मुक्त होने की माँग कर सकेगी। इस तरह अत में आपको सत्ता-दान-यज्ञ आन्दोलन चला-कर शासन-मुक्ति की प्रक्रिया शुरू करनी होगी। जिस तरह भूमि-पतियों से भूमि तथा श्रम और सम्पत्तिवानो से श्रम और सम्पत्ति का दान माँगते है, उसी तरह जिनके हाथ मे सत्ता है, उनसे सत्ता का भी दान माँगेगे और जिस तरह भूमिवान तथा सम्पत्तिवान अभी दान दे रहे है, उसी तरह सत्तावान भी अपने हाथ से सत्ता

छोड देंगे। हम जिस अनुपात मे उनसे सत्ता छुडाते जायँगे, उसी अनुपात से करमुक्त भी होते जायँगे। इस प्रकार हम शासन-रूपी इमारत की एक-एक ईंट गिराते हुए केन्द्रीय शासन से मुक्ति पाने की ओर आगे बढेंगे और गाधीजी के स्वराज्य को कायम करते चलेंगे।

: ८ :

बुद्धि और श्रम का मेल

मैंने आपसे कहा कि वास्तविक स्वराज्य के लिए यह जरूरी है कि समाज की व्यवस्था सहकारी हो, सचालित न हो। सहकार वरावरी के लोगो मे ही हो सकता है। कोई ज्यादा धनी हो और कोई वहुत गरीव रहे, तो उनमे आपस मे सहकार नही हो सकता और न शोषक और शोषित के वीच मे ही सहकार चल सकता है। प्रकृति के नियम के अनुसार पॉच उँगलियो के भेद जैसा कुछ भेद जरूर रहेगा। लेकिन उन पाँच उँगलियो मे फर्क उतना ही होगा, जितना स्वाभाविक है। विनोबाजी कहते है कि एक उगली एक फुट की हो और दूसरी दो इच की, तो मुट्ठी नही बंध सकती। अर्थात् समाज मे अधिक विषमता रहने पर सहकार नही सध सकता। यही कारण है कि विनोवाजी साम्ययोग की वात करते है। वे चाहते है कि समाज की विपमता दूर होकर समता कायम हो। आपको इस प्रश्न पर भी विचार करना होगा।

आज की दुनिया विशेप रूप से दो श्रेणियो मे विभाजित हो गयी है। एक वे, जो शरीरश्रम से उत्पादन करके खाते है और दूसरे वे, जो व्यवस्था और वितरण करने के वहाने विना उत्पादन करके खाते है। एक को श्रमजीवी कहते है और दूसरे को वुद्धि-

जीवी कह सकते है। लोक-भापा में एक को "मजूर" और दूसरे को "हुजूर"। जव तक दुनिया मे हुजूरो और मजूरो का भेद रहेगा, तब तक शासन-मुक्त सहकारी समाज नही हो सकता। यही कारण है कि आज की दुनिया शासन-मुक्ति की वात करती है तो साय-साथ श्रेणीहीन समाज की भी माँग पेश करती है। अगर ससार मे एक ही श्रेणी को रहना है, तो स्वभावत मजूर-वर्ग यानी श्रमजीवी-वर्ग ही होगा, क्योकि हुजूर-वर्ग अकेला अपने आप जिन्दा नही रह सकता। वह मजूर के कन्धे पर ही जिन्दा रह सकता है।

प्रश्न यह है कि यह विषमता दूर होकर मजूरो का श्रेणी-हीन समाज कायम कैसे हो? आप लोग वर्ग-सघर्प की वात सुनते रहते है। इसका मतलब क्या है? इसका मतलव यह है कि मजूर-वर्ग हुजूरो से सघर्ष कर उनकी सुख-सुविधा छीन ले और उस वर्ग का नाश कर दे। लेकिन ऐसे सघर्ष का नक्शा आपको मालूम होना चाहिये। उससे हुजूर और मजूर, दोनो वर्गो का नुकसान है, क्योकि इसमें से द्वेष और हिसा पैदा होगी। हिसा की प्रतिक्रिया प्रतिहिसा होगी और हिसा-प्रतिहिसा की भट्ठी जलती रहेगी। फिर शान्ति कब होगी? जिसके लिए आप व्याकुल है, अगर वही वर्ग विजयी होकर दूसरे वर्ग को निरन्तर दबाकर शान्ति रखने की कोशिश करे, तो वह शान्ति कब्रिस्तान की शान्ति होगी, जिन्दो की शान्ति नही।

वर्ग-सघर्ष का नमूना तो आप देख चुके है। अभी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में जो हिन्दू और मुसलमानो का सघर्ष हुआ उसकी तस्वीर आपको याद है न? जब एक वर्ग दूसरे वर्ग से

सघर्ष करने लगता है, तो इन्सान इन्सान नही रहता। वह शैतान हो जाता है। फिर जो हुआ है वह आपने देखा ही है। वर्ग-सघर्ष चाहे धर्म की बुनियाद पर हो, चाहे आर्थिक आधार पर हो वह सब वर्ग के सामूहिक सघर्ष का ही रूप होता है। फिर जो काड होता है, उसकी रूप-रेखा मे थोडा-बहुत भले ही फर्क हो, लेकिन मूल स्वरूप एक ही होता है। इसलिए गाधीजी और उनके शिष्य विनोबा कहते है कि श्रेणी-हीन समाज की स्थापना के लिए श्रेणी-सघर्ष नही चाहिए। श्रेणी-परिवर्तन चाहिए। मतलब यह कि आप लोगो मे जो बाबू लोग यानी हुजूर लोग है, उन्हे शरीरश्रम का अभ्यास कर श्रमजीवी बनना होगा। अर्थात् उन्हे वर्ग-परिवर्तन की क्रान्ति मे शामिल होना होगा।

साथ-साथ आज जो केवल श्रमजीवी है, उनको बौद्धिक विकास करना होगा, ताकि प्रत्येक के जीवन मे बुद्धि और श्रम के समन्वय से पूरी मनुष्यता का विकास हो। आज तो पूरा मनुष्य कही है ही नही। जो पढे-लिखे बुद्धि-जीवी है, वे हाथ-पैर से कोढी है और जो हाथ-पैर से मिहनत करते है, वे दिमाग से गोरू है। पढे-लिखे लोगो ने 'हेड' और 'हैण्ड' के रूप मे समाज के दो टुकडे कर दिये है। ईश्वर ने हर आदमी को दिमाग और शरीर दोनो दिया है, ताकि वह दोनो को चलाकर अपनी जीविका चलाये और समाज की सेवा भी करे। लेकिन आदमी ने परमेश्वर के भी विधान को उलटकर दिमागवाले और शरीरवाले, ऐसे दो टुकडे करने की कोशिश की है। कुदरत का कानून टूटने पर वह बैठी नही रहती। कानून तोड़नेवाले को सजा देती है। मनुष्य ने जब आज प्रकृति के नियमो का उल्लघन किया, तो

उसके कारण ससार मे इतनी अशान्ति, युद्ध और विग्रह का वोलवाला है। फलस्वरूप सारा विश्व ध्वस की ओर जा रहा है।

अतएव एक ओर बुद्धिजीवियो को शरीरश्रम से उत्पादन करने की शक्ति पैदा करनी होगी और दूसरी ओर श्रमजीवियो मे समुचित शिक्षण से व्यवस्था-शक्ति पैदा करनी होगी। यह सब कार्यक्रम आपको अपने लिए यानी प्रौढो के लिए करना है। आनेवाली पीढी के लिए तो आपको वैज्ञानिक तथा सुव्यवस्थित शिक्षण का कार्यक्रम चलाना होगा। महात्मा गाधी इसके लिए पूरी योजना बताकर गये है। वह योजना है—नयी तालीम की योजना, जिसे आप 'बुनियादी शिक्षा' या 'वेसिक शिक्षण' कहते है। आज देश मे जो पद्धति चल रही है, उससे तो लोग 'वावू' ही वनते है। इस पद्धति को अग्रेजो ने इसलिए चलाया था, कि उन्हे शासन और शोषण के दलाल मिल सकें। उसमे अगर 'मजूर' का वेटा घुस जाय तो शुद्ध 'हुजूर' होकर ही निकलता है और फिर किसी मजूर के कन्धे पर वैठकर खाना चाहता है। अगर घर से वाहर कोई मजूर उसे वैठने के लिए नही मिलता है, तो घर जाकर घरवालो के कन्धो पर बैठ जाता है। इसलिए मै अक्सर आजकल के स्कूल और कालेजो को 'हुजूर वनाने का कारखाना' कहा करता हूँ।

यही कारण है कि सोलह साल पहले जव पहले-पहल स्वराज्य की झलक दीखने लगी, तो महात्मा गाधी ने अग्रेजो के चलाये हुए हुजूर-कारखानो को तोडकर, देश में वुनियादी शिक्षा चलाने पर जोर दिया। यह शिक्षा किताब के जरिये नही, बल्कि हल-वैल, फावडा-कुदाल, चर्खा-कर्घा, ढेंकी-चक्की, कोल्हू-घानी

आदि उत्पादन के कामो के जरिये दी जाती है। गाधीजी ने तो असली स्वराज्य कायम करने के लिये ही ऐसी सलाह दी, लेकिन वदकिस्मती से आपके दिल मे गाधी का आदर है, लेकिन दिमाग मे गाधी के लिए जगह नही है। ऐसी शिक्षा-पद्धति से आप लोग नफरत करने लगे। गाधी को वेवकूफ समझने लगे। कहने लगे कि अगर कुदाल ही चलाना है, तो घर पर कुदाल नही है क्या? स्कूल मे भेजने की जरूरत ही क्या? लेकिन आपकी समझ मे यह नही आया कि अग्रेज तो यही चाहते थे कि कुदाल चलानेवाले गोरू रह जायें और पढने-वाले कोढी रहे। गाधीजी वुनियादी शिक्षा द्वारा सवको आदमी वनाना चाहते थे। वे हरएक को वुद्धिमान तथा वैज्ञानिक श्रमजीवी वनाना चाहते थे, जिससे हरएक उत्पादक का वौद्धिक विकास हो और तव वे आपस मे अपना इन्तजाम करके वाहर के अफसर, इन्स्पेक्टर या डिप्टी की सेवाओ को स्वीकार करने से इनकार कर सके, ताकि दुनिया मे ग्रामराज्य स्थापित होकर शासन-मुक्त स्वराज्य कायम हो सके।

क्या आप हम लोगो की सलाह लेकर आपसी सगठन द्वारा वापू का यह स्वप्न पूरा कर सकेगे? अगर नही कर सकेगे तो आप अनत काल तक लूटे जायँगे और आज जो दुर्दशा है, वह दिन-व-दिन वढती ही जायगी और आखिरकार आपका सर्वनाश हो जायगा।

• •

: ६ :

शंका-समाधान

शका—हिन्दुस्तान मे जब पूरा अहिसक-समाज हो जायगा और बाहर के लोग हिंसक रह जायँगे तब देश की रक्षा का क्या इन्तजाम होगा ?

समाधान—आपको मालूम होना चाहिए कि ऐसा हो नही सकता कि हिन्दुस्तान मे सर्वोदय हो गया अर्थात् पूरे सर्वोदय-समाज की स्थापना हो गयी और सारी दुनिया यो ही रह गयी। कोई एक विचार किसी एक देश में बँधा नही रहता। वह सारी दुनिया मे फैलता है। आपके देश में यह विचार जितना तेज होगा उतना ही दुनिया में ज्यादा फैलेगा, क्योकि गाधीजी ने जिस समस्या को हल करने के लिए अपना सदेश सुनाया, वह समस्या केवल भारत की नही है। वह तो विश्वव्यापी समस्या है।

मैने पहले ही कहा है कि विज्ञान की तरक्की इतनी ज्यादा हो गयी है कि जिन्दा रहने के लिए ही सही, ससार भर के लोग हिसा से मुक्त होना चाहते है। और हिसा-मुक्ति के लिए शासन-मुक्ति चाहिए ही। अत दुनिया के लोग जिस चीज के लिए व्याकुल हैं, भारत अगर उसका रास्ता साकार रूप से बता सके, तो दुनिया उसी रास्ते पर चलने लगेगी, इसमें कोई सन्देह नही। ऐसी परिस्थिति पैदा ही नही हो सकती कि भारत एक घेरे के

अन्दर सर्वोदय को पूरा कर दे और दुनिया आज जैसी हिंसा को माननेवाली रह जाय। तर्क की खातिर अगर मान भी लें कि आप जैसा कहते है, वैसी ही स्थिति रहेगी तो भी हमे कोई खतरा नही दीखता है। आपको मालूम होना चाहिए कि आज कोई मुल्क किसी दूसरे मुल्क पर अकेला हमला नही कर सकता। जब एक मुल्क हमला करेगा तो दूसरे किसी मुल्क को वह सहन नही होगा और वह हमला करनेवाले मुल्क पर हमला करेगा। इसलिए अगर कोई मुल्क भारत पर हमला करेगा, तो दुनिया भर में हिंसक मुल्क आपस में ही लडेगे। इससे हो सकता है कि भारत की तात्कालिक कुछ हानि हो, लेकिन सारी दुनिया के आपस मे लडने के बाद लोग आज से ज्यादा हिंसा के विरोध के कायल हो जायँगे। भारत की भी तात्कालिक जो हानि होगी वह उतनी नही होगी, जितनी भारत के भी युद्ध मे शामिल होने मे होती।

इसके अलावा एक और बात आपको समझनी चाहिए। दुनिया मे कोई बिना कारण कुछ नही करता। हर क्रिया के पीछे कुछ मतलब होता है। जब कोई मुल्क किसी दूसरे मुल्क पर हमला करता है, तो उसका उद्देश्य विजित मुल्क पर हुकूमत करना होता है। आपको मालूम होना चाहिए कि बिना जनता के सहयोग के कोई मुल्क किसी दूसरे मुल्क पर हुकूमत नही कर सकता। आप जब भारत मे सहकारी जन-शक्ति का इतना पूरा सगठन कर लेगे, जिससे जनता अपने राष्ट्रीय शासन को ही अनावश्यक करके विघटित कर दे, तो क्या वह शक्ति विदेशी शासन को कबूल कर उससे सहयोग करेगी ? अतएव आपको इसकी चिन्ता

करने की जरूरत नही। आप एकाग्रता के साथ अपना स्वराज्य कायम करने मे लग जाइये।

शका—आपने कहा कि भूमि का ग्रामीकरण करना होगा, तो क्या सारी जमीन इकट्ठी रहेगी और सब लोग उसमे मजदूरी करेगे? इससे तो खेती में किसीको दिलचस्पी नही रहेगी।

समाधान—ग्रामीकरण का अर्थ यह नही है कि कुल सामूहिक खेती ही हो। बापू के स्वराज्य मे हरएक व्यक्ति और परिवार के स्वतत्र विकास का मौका है। ऐसा मौका देते हुए सामूहिक जीवन का अभ्यास तथा सस्कार डालना होगा। इसलिए हमारा नारा है—'खेत समाज का, खेती परिवार की।' इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भूमि की योजना यह है

सारी जमीन गाँव की रहेगी। ग्राम-सभा उसमे से छठा या दसवाँ भाग सामूहिक खेती के लिए रखेगी। बाकी भूमि को परिवारो मे जरूरत और योग्यतानुसार बाँट देगी। प्रत्येक परिवार इस बात के लिए स्वतत्र रहेगा कि वह अकेले खेती करेगा या कुछ लोगो के साथ मिलकर सम्मिलित खेती करेगा। जिसके पास पूरे समय काम देनेवाला दूसरा धधा न हो और जो अपने हाथो से खेती करने को तैयार हो, उसे भूमि अवश्य मिलेगी। सामूहिक खेती प्रत्येक परिवार के श्रम-दान से चलेगी और उसकी पैदावार गाँव के सार्वजनिक कार्य के लिए होगी। गाँव की बुनियादी शाला इसी सार्वजनिक जमीन पर होगी।

ग्राम-सभा यह भी निर्णय करेगी कि कितने साल बाद भूमि-विभाजन पर फिर विचार किया जायगा। इस बीच परिस्थिति बदलने के कारण अगर किसीको अधिक भूमि की

जरूरत पडी तो सामूहिक खेती मे से दी जा सकेगी। दूसरी ओर खेती छोड़कर दूसरे धधे मे चले जाने पर उसका खेत सामूहिक खेत मे मिल जायगा। इस तरह सामूहिक खेत से बीच की परिस्थिति का भी मुकाबला किया जा सकेगा। फिर खेती करने के लिए दिलचस्पी न उठने का सवाल ही नही उठता। इस योजना से दोनो बाते होगी। प्रत्येक परिवार दिलचस्पी तथा बुद्धिपूर्वक काम करके अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकेगा और सामूहिक खेती मे ग्राम-समाज के सभी परिवार मिलकर काम करने के कारण उनमे सामाजिक भावना का निरतर अभ्यास होता रहेगा, जिससे लोगो की प्रकृति मे सहकारिता का सस्कार बनेगा और बढता रहेगा।

शका—हल, चर्खा, कुदाली मे भी लोहा चाहिए, जो हमारे गाँव मे पैदा नही हो सकता, तो 'केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार' से हम कैसे जिन्दा रह सकेगे?

समाधान—'केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार' की भी एक मर्यादा है। किसी चीज की पूर्ण स्थिति अन्तिम स्थिति है। पूर्ण तो सिर्फ भगवान् ही है, जो दिखाई नही देता। जो कुछ दिखाई देता है और आगे दिखाई देगा, वह सब अपूर्ण है। अत पूंजी के बिना समाज का अर्थ है, पूंजी की गुलामी से मुक्त होना।

प्रधानत. उद्योग तीन किस्म के होगे गृह-उद्योग, ग्राम-उद्योग और केन्द्रित उद्योग। जिन उद्योगो को आप परिवार की सामूहिक शक्ति से चला सकेगे, उन्हे 'गृह-उद्योग' कहेगे। उसके बाद जिन उद्योगो को गाँव सामूहिक शक्ति से चला सकेगा, वे 'ग्राम-उद्योग' क्षेत्र मे रहेगे। बाकी उद्योग जो समाज के लिए

अनिवार्य है, वे सब 'केन्द्रित उद्योग' के रूप मे रहेंगे। गृह-उद्योग मे भी दो विभाग होगे, एक वह उद्योग जिसमें पूरा परिवार पूरे समय के लिए लगेगा और दूसरा वह जो खेती के साथ सहायक धधे के रूप में रहेगा।

अभी मै बहिष्कार की जो बात करता हूँ, वह फिलहाल अन्न और वस्त्र के क्षेत्र के लिए है, क्योकि इन्ही पर मनुष्य की जान निर्भर रहती है। इसके उपरान्त आप जितनी चीजो का बहिष्कार करके ग्राम-उद्योग चला सके, उतना ही अच्छा है। इस विचार को आपको और सफाई से समझ लेना चाहिए। अन्न और वस्त्र के रूप मे जिन सामग्रियो का आप उपभोग करते है, उन्हे किसी हालत में केन्द्र से नही लेना चाहिए। लेकिन उन्हें पैदा करने के लिए यदि किसी औजार की आवश्यकता हो, तो वह केन्द्र से भी लिया जा सकता है। बात यह है कि अगर उपभोग्य सामग्री के लिए केन्द्र का मुहताज रहना पडे तो आवश्यकता पडने पर आप केन्द्रीय शक्ति का विरोध नही कर सकेंगे। लेकिन औजार केन्द्र से लिया तो विरोध के काल मे जितना औजार आपके पास आ चुका है, उसके सहारे आप अपना काम चला सकेंगे। इसी दृष्टि से औजार चलाने के लिए केन्द्र से प्राप्त बिजली, तेल आदि नही लेना है, क्योकि ऐसा करने से आप अपनी दैनिक आवश्यकता के लिए उनकी मुट्ठी में चले जायँगे।

शका—केन्द्रित-उद्योग बहिष्कार से यत्रो का भी बहिष्कार हो जायगा। लेकिन आपने कहा है कि आज का समाज विज्ञान के लिए हिंसा को छोडना चाहता है। यन्त्र-बहिष्कार मे तो विज्ञान को ही छोडना होगा। फिर पुराने जमाने में जैसा था, अन्याय के

प्रतिकार मे यदि थोड़ी-बहुत हिंसा रह जाय तो आपको आपत्ति क्या है?

समाधान—केन्द्रित-उद्योग बहिष्कार से विज्ञान का बहिष्कार नहीं होता। विज्ञान का मतलब बड़े-बड़े यंत्र नहीं हैं, बल्कि उस यंत्र के पीछे जो शास्त्र है यानी जो प्रकृति का नियम है वह अर्थात् प्रकृति की शक्तियों की जानकारी ही विज्ञान है। इस जानकारी को मनुष्य वैज्ञानिक तथा अवैज्ञानिक, दोनों तरीकों से इस्तेमाल कर सकता है। मनुष्य चाहे इसे अपनी जिन्दगी का साधन बना दे और चाहे उसे अपने संहारक के रूप मे इस्तेमाल करे। यह निर्भर करता है मनुष्य की बुद्धि और वृत्ति पर। आज दुनिया शासन और पूंजी के संगठन में लगी हुई है तो आज का सारा वैज्ञानिक आविष्कार उसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जाता है, तथा उसका उपयोग लाजिमी नतीजे—युद्ध की तैयारी के लिए किया जाता है। जिस दिन दुनिया शासन-मुक्त स्वावलम्बी समाज के संगठन मे लगेगी उस दिन सारी वैज्ञानिक खोज उसीके लिए की जायगी।

आपके मन में यह सवाल इसीलिए उठता है कि केन्द्रवादी प्रचार के कारण आपने यंत्र को ही विज्ञान मान लिया है, लेकिन यंत्र-शास्त्र विज्ञान की एक शाखा है। शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान, राजनीति-विज्ञान, अर्थ-शास्त्र ये सभी विज्ञान हैं; बल्कि मनुष्य-समाज के लिए ये ही सब विज्ञान ज्यादा मौलिक है। बाकी जितने पदार्थ विज्ञान के दायरे मे आते है वे सब गौण है। अगर कोई यंत्र, यंत्र-शास्त्र के हिसाब से पूरा वैज्ञानिक भी हो, लेकिन उसका इस्तेमाल शरीर-विज्ञान की

दृष्टि से हानिकारक हो तो वह अवैज्ञानिक है। मिसाल के तौर पर आटा पीसने की मिल में आटे का पोषक तत्त्व घट जाता है। यह आपको मालूम है कि आटे का वैज्ञानिक इस्तेमाल शरीर को पोषण देना है, तो जिस मशीन के कारण उसका पोषक तत्त्व ही घट जाता है उसे आप वैज्ञानिक नही कह सकते। वह मिल, यत्र-विज्ञान के हिसाव से पूर्ण होने पर भी मानव-हित की दृष्टि से अवैज्ञानिक है। उसी तरह एक ट्रैक्टर पूर्ण वैज्ञानिक यत्र है, फिर भी अगर उसके इस्तेमाल से किसी देश मे वेकारी पैदा होती है, तो उस देश के अर्थशास्त्र के हिसाव से वह अवैज्ञानिक है। उसी तरह किसी यत्र के इस्तेमाल से अगर आप केन्द्रीय सत्ता की मुट्ठी मे चले जाते है, तो राजनीति-शास्त्र के अनुसार उसका इस्तेमाल अवैज्ञानिक है।

अतएव आप जव विज्ञान की वात सोचते है तो एकागी विचार करने से काम नही चलेगा। सर्वांगीण दृष्टि से ही सोचना होगा। किस चीज को रखना है और किसको छोडना है, इसका निर्णय करने के लिए आपको विज्ञान की हर शाखा की दृष्टि से विचार करना होगा। इसलिए जव मै वास्तविक स्वराज्य की स्थापना के लिए केन्द्रित उद्योगो के वहिष्कार की वात कहता हूँ तो समझना चाहिए कि मै विज्ञान के वैज्ञानिक इस्तेमाल का मार्ग वता रहा हूं। फिर स्वावलम्बी समाज के लिए यत्र को छोडना तो नही है। उस समय आविष्कार की दिशा ही वदल जायगी। अगर हमको लगे कि विजली की शक्ति आवश्यक है तो हमे विकेन्द्रित तरीके से-बिजली पैदा करने के आविष्कार मे लगना होगा। जव सामान्य व्यक्ति सूर्यकिरण को केन्द्रित कर के

घर मे आग जला सकते है, खाना बना सकते है, तो उसे और अधिक केन्द्रित करके घर-घर मे बिजली पैदा करना असभव है क्या? मै आपसे कहना चाहता हूं कि बड़े-बड़े यंत्रों के आविष्कार मे जितनी वैज्ञानिक बुद्धि की जरूरत है, उससे ज्यादा बारीक बुद्धि इस प्रकार की खोज के लिए चाहिए।

इन तमाम बातो को समझने के लिए यत्रो की मर्यादा के आधार को समझ लेना चाहिए। सर्वोदय की दृष्टि से किसी यंत्र को छोडना या इस्तेमाल करना सनातन नियम नहीं होगा। देश और काल के हिसाब से परिस्थिति के अनुसार ही हर यत्र पर विचार करना होगा। उस निर्णय के लिए बुनियादी तत्त्व ये है

(१) **राजनैतिक तत्त्व**—जनता का राज्य यानी स्वराज्य मे जो कुछ भी केन्द्रीय व्यवस्था बच जायगी, वह भी अगर अधिकार-वृद्धि के लिए या और किसी कारण शासन-शक्ति का दुरुपयोग करने लगे तो जनता को उसके लिए विरोध मे विद्रोह करने की परिस्थिति निरतर कायम रखनी होगी, नही तो स्वराज्य की रक्षा नही होगी। इसलिए ऐसे किसी भी यत्र का हम इस्तेमाल नही करेगे, जिसकी व्यवस्था या चालक-शक्ति के लिए किसी केन्द्रीय संगठन पर भरोसा करना पडे।

(२) **आर्थिक तत्त्व**—ऐसा यत्र इस्तेमाल नही करना है, जिससे देश मे बेकारी पैदा हो, चाहे वह यत्र विकेन्द्रित शक्ति से क्यो न चले।

(३) **सामाजिक तत्त्व**—यत्र जिस काल मे इस्तेमाल होगा, काल की जनता के बौद्धिक स्तर को भी देखना होगा,

क्योकि अगर उसकी जटिलता ऐसी रही, जिससे उसकी मरम्मत के लिए भी किसी विशेषज्ञ-वर्ग की आवश्यकता हो, तो भी श्रेणी-हीन समाज की दृष्टि से वह हानिकारक ही होगा।

उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार कोई यत्र अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और रूस जैसे हलकी (-कम) आवादी के मुल्क में चाहे चल सके, लेकिन चीन, हिन्दुस्तान या जापान जैसे मुल्क में वेकारी पैदा करने के कारण उसका चलना अवैज्ञानिक हो जायगा। उसी तरह बिजली से चलनेवाला यत्र आज हानिकारक हो सकता है, लेकिन विकेन्द्रित बिजली का आविष्कार होने पर उसका इस्तेमाल वैज्ञानिक भी हो सकता है। उसी तरह सामाजिक स्तर की वृद्धि के साथ यत्रो में भी फेर-बदल हो सकता है।

अतएव इन प्रश्नो पर आपको गहराई से और वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना होगा।

शका—आपने कहा कि पुराने जमाने मे गाँव के लोग अपना काम अपने आप चलाते थे। लेकिन कभी ताडका का उपद्रव हुआ तो लोग राजा के पास पहुँच जाते थे। इसका मतलब है कि उन दिनो भी कुछ हद तक राज्य था ही। शासनमुक्त समाज में ऐसी जरूरत पड जाय तो हम क्या करेंगे? क्या उस समय भी कुछ हद तक शासन रहेगा? यदि रहेगा तो उसकी सीमा क्या होगी?

समाधान—वैसे तो पूर्ण एक भगवान् ही होता है, अत पूर्ण शासनहीन समाज भी भगवान् का ही रूप होगा, अर्थात् अदृश्य रहेगा। शासनमुक्त-समाज का साकार रूप शासन-निरपेक्ष समाज ही होगा। इसका मतलब यह है कि साधारणत समाज

स्वावलम्बी रहेगा। लेकिन थोडा-सा बचा हुआ शासन रहेगा ही। वह जरूरत पडने पर रेलगाडी की जजीर का काम करेगा। मैने कहा है कि ऐसा समाज सहकारी होगा, सचालित नही। सचालित समाज वह होता है, जिसे ऊपर से चलाया जाता है। सहकारी समाज नीचे की मूल आबादी के आपसी सहयोग से चलता है।

आज जो सरकारे चलती है, वे एक तरह समाज का शीर्षासन ही है। आज समाज की जड ऊपर और शाखा नीचे है। पेड की जड वहाँ रहती है जहाँ से वह अपने पोषण के लिए रस खीचती है और उसकी शाखा आसमान की तरफ रहती है। आज की दुनिया की सरकारे रस तो जनता से लेती है लेकिन उनकी जड आसमान की ओर है। उनकी जड दिल्ली, लन्दन, न्यूयार्क, मास्को आदि नगरो मे है और शाखाएँ-प्रशाखाएँ देहातो की ओर। यही कारण है कि आपको पता नही रहता कि आपका इन्तजाम कैसे, कहाँ से और कौन करता है। पता चले भी तो कैसे ? सारा सचालन ऊपर से होता है। इस व्यवस्था को उलट देना है। दिल्ली, लखनऊ या पटना मे बैठकर लोग तय नही करेंगे कि ग्राम-पचायत का काम और अधिकार क्या है ? वह निर्णय आपको करना होगा।

ग्राम-सभा यह तय करेगी कि समाज की कितनी जिम्मेवारी गाँव के लोग मिलकर उठा सकते है। उस हिसाब से आप अपना विधान बनायेगे। फिर आप इस बात की सूची तैयार करेंगे कि कितनी चीजे आपके लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जिन्हे आप गाँव की सम्मिलित शक्ति मे नही कर सकेंगे, ऐसी चीजो

के लिए जिम्मेवारी जिले को सौपेंगे और उस जिम्मेवारी को चलाने के लिए अपनी गाँव-सभा से प्रतिनिधि भेज देंगे। इसी तरह जिला निर्णय करेगा कि कितनी जिम्मेवारी उसकी है और कितनी जिम्मेवारी प्रान्त की होगी। फिर प्रान्त राष्ट्रीय केन्द्र के लिए निर्णय करेगा और राष्ट्रीय केन्द्र अपने बचे काम अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के लिए रखेंगे। इस तरह समाज-व्यवस्था की जड गाँव मे रहेगी और धीरे-धीरे सूक्ष्म होते हुए अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र पर पहुंचकर करीब-करीब बिन्दुवत् हो जायगी। इस योजना से गाँव-स्वावलम्बन के आधार पर अखिल विश्व-परिवार का भी सगठन होगा। यही है बापू के स्वराज्य का चित्र।

शका—ग्राम-राज्य के नाम से तो आप लोग एकदम छुट्टी लेना चाहते है। लेकिन जब तक हम योग्य नही होते है, तब तक आप लोगो के सगठन की आवश्यकता रहेगी। आपके खयाल में उसका क्या स्वरूप होगा ?

समाधान—हाँ, यह सही है कि आप लोग सदियो तक 'सरकार माई-बाप' कहकर दूसरो का भरोसा करते रहे। ऐसी बुद्धि अग्रेजो ने हमको सिखायी है। उन्होने यह बात इसलिए सिखायी कि आप अपने बारे में कुछ न सोचें, उन्ही की ओर ताकते रहे, ताकि पीछे वे लूट मचा सके। जेब काटनेवाले का तरीका मालूम है न! वह एक ओर बातचीत मे अपनी ओर फंसा रखता है और दूसरे हाथ से जेब काट लेता है। इस तरह सदियो तक की आदत के कारण आज हमने अपनी भलाई की बात भी सोचनी छोड दी है। तकलीफ होने पर दूसरे के पास

दौडकर जाते है। इसलिए यह सही है कि कुछ दिन शिक्षा देने के लिए हमारी जरूरत है।

लेकिन सवाल यह है कि हम आपके बीच रहे भी तो किसके सहारे रहें। आज तो हम राज्य या पूंजी के सहारे रहते है। राज्य से मदद लेकर या पूंजीपतियो से चदा मॉगकर आश्रम बनाकर रहते है तथा आपके बीच मे आकर काम करते है। भीष्म-द्रोण की कहानी मालूम है न! उनका दिल पाडवो की भलाई की ओर ही था। उनकी सारी सहानुभूति और प्रेम पाडवो के लिए था। फिर भी चूंकि उनकी परवरिश दुर्योधन की ओर से हुई थी, इसलिए मौके पर उन्हे दुर्योधन का ही साथ देना पडा। हम लोगो की परवरिश राज्य की ओर से, पूंजी की ओर से होगी तो हमारी सहानुभृति चाहे जितनी आपके लिए हो, हमारा आशीर्वाद हमेशा उनको ही दीर्घायु बनाने के लिए होगा। जब तक यह स्वरूप रहेगा, हम चाहे जितने दिन आपके बीच मे काम करें, हमारे जरिये आपका ग्राम-राज्य नही स्थापित होगा।

इसलिए अगर आपको हमारी आवश्यकता है तो पहली जरूरत यह है कि हम पूंजी के भरोसे जिन्दा न रहकर अपने श्रम और आपके श्रम-दान से जिन्दा रहे। अत हमारा सगठन भी ऊपर से नीचे न जाकर, नीचे से ऊपर जाना चाहिए। तो सबसे पहले गाँव मे सबको मिलकर यह तय करना होगा कि हमे अपना काम खुद चलाना है। फिर रास्ता बताने के लिए हमसे जरूरत पडे तो जिस तरह से आप किसी भी गुरु-पुरोहित को बसाते है, उसी तरह किसी को बसायेंगे। उनके लिए थोडी ज़मीन भी देनी होगी, कुछ साधन भी देने होगे, जिससे वह और उनका

परिवार मेहनत करके उत्पादन कर सके। अगर कुछ घटेगा तो आप अपने श्रम से पैदा की हुई सामग्री थोडी-थोडी देकर पूरा कर देंगे। इस तरह से एक-एक इलाके के लोग जव इस वात का सकल्प कर लेगे कि हमको वाहरी राज्य नही चाहिए, हम ग्राम-राज्य ही स्थापित करेगे और सव लोग मिलकर किसी दूसरे मित्र-परिवार को अपने वीच मे वसा लेगे तो थोडे ही दिन मे आपकी योग्यता वढ जायेगी। तव हमारी सेवा की आवश्यकता ही नही रह जायेगी।

इस प्रकार से आश्रमो की भी व्यवस्था होगी। आश्रमो में भी जमीन, ग्रामोद्योग आदि उत्पादन के साधन होगे, जिनसे लोग मेहनत करके पैदा करेगे और जो घटेगा, उसे आस-पास के लोग श्रम-दान से पूरा करेंगे। ऐसे आश्रमो मे खेती-वारी और ग्रामोद्योगो की तरक्की की खोज होगी और आप जिन सेवको को अपने बीच में बिठाना चाहते है, उनकी ट्रेनिग होगी। इन आश्रमो मे आपके वच्चो के शिक्षण का भी प्रवन्ध हो सकता है।

हम लोगो का स्वरूप जब ऐसा हो जायेगा तभी हम केन्द्रीय-राज्य और पूंजी के वाहर निकलने के लिए आपका मार्गदर्शन करते रह सकेंगे। नही तो हमारी सहानुभूति आपके लिए और आशीर्वाद उनके लिए रहने से कुछ भी नतीजा नही निकलेगा।

शका—अगर सब लोग शरीरश्रम से उत्पादन करेगे तो व्यवस्था का काम कौन चलायेगा? आखिर दफ्तर, कचहरी, डाकखाना, रेल, जहाज आदि कुछ-कुछ तो चलेगा ही। उसका क्या होगा?

समाधान—इस वात को समझने के लिए श्रेणीहीन समाज

पर गहराई से विचार करना होगा। मैने कहा है कि हरएक आदमी को शरीरश्रम और वौद्धिकश्रम दोनो करना होगा। दोनो के अभ्यास और विकास से ही वह पूर्ण मनुष्य बनेगा। तव आदमी वुद्धिपूर्वक वैज्ञानिक शरीरश्रम मे उत्पादन करके अपने शरीर का गुजारा करेगा और व्यवस्था का काम अधिक आदमियो मे वॉटकर फैला देना होगा, ताकि शुद्ध वुद्धि का काम केवल समाज-सेवा मे अर्पित हो सके।

अव रहा उस व्यवस्था का काम जो समाज के वृक्ष के ऊपर की डाली का होगा। उनके लिए नीचेवाले ऐसा नियम बना सकते है कि वे भी अमुक अवधि तक शरीरश्रम से उत्पादन अवश्य करे और जिस अनुपात से वे उत्पादन करे, व्यवस्था-कार्य मे भी उनका वेतन उसी अनुपात से मिले। इस प्रक्रिया से अनिवार्य केन्द्रित-व्यवस्था के कारण विशिष्ट वुद्धिजीवी वर्ग की सृष्टि नही हो पायेगी।

शका—लेकिन रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसा विशिष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति हो तो क्या उसे भी उत्पादन-श्रम करना होगा? और होगा तो क्या प्रतिभा का दुरुपयोग नही होगा?

समाधान—असाधारण प्रतिभा की वुनियाद पर समाज-व्यवस्था का ढाँचा नही वनता है। समाज मे जव कभी कोई असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति निकलेगे, उस समय का समाज उनके लिए असाधारण व्यवस्था सोच लेगा। आज उसके लिए आप कुछ नही सोच सकते है, क्योकि जो साधारण से परे होते है उन सवकी विशेषता एक किस्म की नही होगी। विशेपता का प्रकार देखकर समाज के लोग समुचित व्यवस्था कर लेंगे।

लेकिन मै आपसे कहना चाहता हूं कि उत्पादक-श्रम किसी के प्रतिभा-विकास के लिए वाधक नही होता, वल्कि वह प्रतिभा वास्तविक जीवन के अनुभव के कारण और प्रखर होती है। निसदेह रवीन्द्रनाथ ने इस तथ्य को महसूस किया था। यही कारण है कि उन्होने उत्पादन के अभ्यास से शिक्षण-कला का विचार जाहिर किया और विचार को अमली रूप देने के लिए शाति-निकेतन और श्री-निकेतन का सगठन किया।

शका—आपने कहा है कि उत्पादन को प्रक्रिया के माध्यम से तालीम दी जायगी। साथ ही यह भी कहा है कि वडे-वडे कारखाने, नहर, रेलगाडी आदि भी रहेगे, तो जिनको इजीनियरिंग, डाक्टरी आदि सीखनी है, वे कैसे सीखेगे तथा कवि और कलाकार का शिक्षण कैसे होगा?

समाधान—इजीनियरिग, डाक्टरी आदि केवल किताबें पढने से नही आती। वचपन से ही यदि उत्पादन की प्रक्रिया का अभ्यास रहेगा, तो ये विद्याएं ज्यादा अच्छी तरह समझ में आयेगी। यह कैसे होगा, इसे समझने के लिए बुनियादी शिक्षा की पूरी योजना समझनी होगी।

मैने कहा है कि समाज के हर कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षा देनी होगी और यह भी कहा है कि सहकारी-समाज के लिए यह आवश्यक है कि हर व्यक्ति का बौद्धिक, शारीरिक और सास्कृतिक स्तर करीव-करीब बराबर हो। इसलिए हर व्यक्ति की पूर्णरूपेण शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। गाधीजी ने यह भी कहा है कि शिक्षा की अवधि जन्म से मृत्यु तक होती है। यह तो आप मानेगे कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक किसी-न-किसी

काम मे लगा रहता है। रेलवे, मोटर, हवाई जहाज आदि चीजे यदि दुनिया मे रहेगी, तो इनके उत्पादन के कारखाने कही तो रहेगे ही। ऐसे कारखानो मे आज मजदूर काम करते है। उस समय उत्पादन का काम विद्यार्थी करेगे। इन कारखानो मे आज जो विशेषज्ञ, इजीनियर आदि रहते है वे शिक्षक होगे। विद्यार्थियो के साथ प्रत्यक्ष उत्पादन का काम करते हुए उन्हे शास्त्रीय ज्ञान भी देंगे। ताता नगर, चितरजन आदि जो वडे-वडे औद्योगिक केन्द्र है, वे सव विश्वविद्यालय हो जायंगे। गृह-उद्योग, ग्रामोद्योग के माध्यम से नीचे दर्जे मे शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी ऐसे केन्द्रो मे जायंगे, तो उन्हे पहले ही से विभिन्न विज्ञानो की जानकारी रहेगी। फलस्वरूप आज इजीनियरिग कॉलेज मे जो विद्यार्थी भरती होते है, उनसे ये विद्यार्थी ज्यादा योग्य होगे। उसी तरह कृषि, वागवानी तथा वनस्पति-शास्त्र में रुचि रखनेवाले लोग प्रकृति की गोद मे विचरते रहने के कारण साहित्य, कला तथा कविता का भी विकास कर सकेगे। जिनकी प्रकृति स्वभावत साहित्य, कला आदि की ओर झुकी रहती है, वे कुदरती तौर पर ताता नगर तथा चितरजन की ओर नही झुकेगे। वे वचपन से ही ऐसे उत्पादन का काम चुनेगे, जिससे उन्हे प्रकृति के साथ एक होकर कला के विकास का मौका मिले।

●

हमारे प्रकाशन

(भूदान-साहित्य)

त्रिवेणी	।।)
भगवान् के दरबार में	=)
साहित्यिको से	।।)
विनोबा-प्रवचन	।।।)
गीता प्रवचन	१)
भूदान-यज्ञ (नवजीवन)	१।)
विनोबा के साथ	१)
मानवीय क्रांति	।)
क्राति का अगला कदम	।)
साम्ययोग की राहपर	।)
शासन-मुक्त समाज की ओर	।=)
युग की महान् चुनौती	।)
ग्रामराज	।-)
सपत्तिदान-यज्ञ	।)
व्यवहार-शुद्धि	।=)
सर्वोदय का इतिहास-शास्त्र	।)
श्रमदान	।)
पावन प्रसग	।=)
भूदान-आरोहण	।।)
भूदान-दीपिका	=)
साम्ययोग का रेखाचित्र	=)
सत विनोवा और भूदान-यज्ञ	।-)
नयी क्राति के गीत	।)
धरती के गीत	=)
विनोवा-चित्रावली	।।।)
Sarvodaya & World Peace	0-2
Revobutionary Bhoodan ycjna	0-4
Vinoba & His Misson	3-0

(ग्राम-जीवन-साहित्य)

हमारे गाँवो का पुनर्निर्माण	१।।)
ग्रामसेवा के दस कार्यक्रम	१।)
गाँव-आदोलन क्यो ?	३।।)
स्त्रियाँ और ग्रामोद्योग	।)
नवभारत	४)
ग्राम-स्वालम्बन की ओर	।)
ग्राम-सेवा की योजना	=)

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी